॥ श्रीहरिः ॥

320▲

वास्तविक त्याग



गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

वास्तविक त्याग

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक

जयदयाल गोयन्दका

सं० २०६६ चौदहवाँ पुनर्मुद्रण ५,०००
कुल मुद्रण ८१,५००

❖ मूल्य— ६ रु०
(छः रुपये)

ISBN 81-293-0907-6

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

[320] वा० त्याग 1 A

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

वास्तविक त्याग

शिखिध्वज और चूडालाके आख्यानका आरम्भ, शिखिध्वजके गुणोंका तथा चूडालाके साथ विवाह और क्रीडाका वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! अब तुम अविचल राजा शिखिध्वजकी तरह शान्तिपूर्वक अपने स्वरूपमें स्थित रहो।

श्रीरामजीने पूछा—ब्रह्मन् ! यह शिखिध्वज कौन था और उसने परमपद कैसे प्राप्त किया ? गुरुवर ! उसका चरित्र मुझसे कहिये, जिससे मैं उसे अच्छी प्रकार जान सकूँ।

श्रीवसिष्ठजीने कहा—श्रीराम ! अतीतकालीन सातवें मन्वन्तरकी चतुर्थ चतुर्युगीके द्वापरयुगमें कुरुवंशमें इसी महासर्गमें शिखिध्वज नामका राजा हुआ था। जम्बूद्वीपमें प्रसिद्ध विन्ध्याचलके समीपवर्ती मालवदेशकी उज्जयिनी नगरीमें वह राजा राज्य करता था। वह धैर्य, औदार्य आदि गुणोंसे युक्त था। उसमें क्षमा, शम, दम विद्यमान थे। वह वीरतासे पूर्ण था। शुभ कर्मोंके अनुष्ठानमें लगा रहता था। मितभाषी था। इस प्रकार वह अनेक गुणोंका खजाना था। समस्त यज्ञोंका निरन्तर अनुष्ठान करता था। उसने बड़े-बड़े धनुर्धारियोंको जीत लिया था। वह लोकोपयोगी शुभ कार्योंको करता था और पृथ्वीका पालन करता था। वह कोमल, स्निग्ध

और मधुर स्वभाववाला, दक्ष तथा प्रेमका समुद्र था। वह सुन्दर, शान्त, भाग्यवान्, प्रतापी और धर्मवत्सल था। वह विनययुक्त वाक्योंका प्रयोग करता था तथा याचकोंको सभी प्रकारके पदार्थ देता था। वह उत्तम पदार्थोंका भोक्ता, सत्सङ्गसे युक्त और समस्त वेद-शास्त्रोंका उत्तम श्रोता था। वह शिखिध्वज सब बातोंको जानते हुए भी जानकारीके अभिमानसे रहित था, स्त्री-व्यसन आदिका तो उसने तृणवत् त्याग कर दिया था। बाल्यकालमें ही उसके पिता स्वर्ग चल दिये थे। उसके बाद अपने बाहुबलसे उस जितेन्द्रिय शिखिध्वजने सोलह वर्षतक स्वयं ही दिग्विजय करके अखिल भूमण्डलको अपनी साम्राज्य-सम्पत्तिमें परिणत कर दिया। तदनन्तर निःशङ्क होकर धर्मसे प्रजाका पालन करते हुए वे बुद्धिमान् राजा शिखिध्वज मन्त्रियोंके साथ अपने यशसे दिशाओंको उज्ज्वल करते हुए स्थित थे।

जब वे युवा हो गये, तब उन्होंने अनेक वन और उपवनोंमें, लीला-सरोवरोंमें, लतागृहोंमें तथा विविध भूमियोंमें विचरण किया। उन्होंने वन और उपवनके गुण-वर्णनसे युक्त शृङ्गाररससे परिपूर्ण कथाओंमें रस लिया तथा सुवर्ण-कलशके सदृश स्तनवाली, हारसे सुशोभित शरीर तथा चञ्चल केशोंसे युक्त कुमारियोंका मनसे आदर किया। चतुर मन्त्रियोंने राजाका अभिप्राय जान लिया। तदनन्तर राजाके विवाहके लिये विचार करके मन्त्रियोंने सौराष्ट्रदेशके राजासे युवती कन्याकी याचना की। राजा शिखिध्वजने नवीन यौवनसे सम्पन्न तथा अपने अनुरूप उस उत्तम कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। राजा शिखिध्वजकी पत्नी संसारमें चूडाला नामसे विख्यात थी। वह भी

अपने अनुरूप पति प्राप्तकर प्रफुल्लित हो रही थी। राजा शिखिध्वज नीलकमलके सदृश नेत्रवाली उस चूडालाको स्नेहसे प्रसन्न रखते थे। एक-दूसरेके प्रति अर्पित चित्तवाले उन दोनोंकी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। हाव, भाव, विलास आदि शृङ्गारमयी चेष्टाविशेषोंसे परिपूर्ण अङ्गोंके कारण वह चूडाला सुन्दर नवीन लताके समान शोभित हो रही थी। शिखिध्वज राजाको मन्त्रियोंद्वारा सभी उपभोग-सामग्री समयानुसार समर्पित की जाती थी। उसकी प्रजा सुव्यवस्थित थी। परम सुखी वह राजा कमलिनीके साथ राजहंसके सदृश उस प्रियतमाके साथ रमण करता था। वे दोनों निरन्तर एक-दूसरेसे मिले हुए थे। एक-दूसरेकी चेष्टाएँ उन्हें प्रिय लगती थीं। एक-दूसरेसे शिक्षाग्रहण करनेके कारण वे दोनों सम्पूर्ण कलाओंके ज्ञाता हो गये थे। परस्पर अत्यन्त मित्रताको प्राप्त हुए वे दोनों एक-दूसरेके हृदयमें बस जानेके कारण मानो एकरूप ही हो गये थे। जैसे ब्रह्मचारी नियत कालतक गुरुमुखसे अध्ययन करके समस्त शास्त्रोंका पण्डित हो जाता है, वैसे ही कुछ नियत कालतक अपने स्वामीके मुखसे सुन-सुनकर समस्त शास्त्रोंके तात्पर्यमें और चित्रकला आदिमें भी चातुर्य प्राप्तकर चूडाला समस्त विषयोंकी पण्डिता हो गयी थी तथा चूडालाके द्वारा इस शिखिध्वजने भी नृत्य, वाद्य आदि जितने कला-कौशल हैं, उन सबका शिक्षण ग्रहण किया और वे कलाओंके पारंगत विद्वान् हो गये। उन दोनोंकी बुद्धिचातुर्यसे युक्त तथा सुन्दर थी। वे दोनों स्नेहसे प्रसन्न और मधुर लगते थे। ज्ञानतत्त्वका कथन करनेमें भी वे समान थे। श्रेष्ठ पुरुषोंका अनुकरण करते थे। सदाचार-परायण थे। प्रजाजनोंके वृत्तान्तका भी ज्ञान रखते थे। वे समस्त कलाओंके पण्डित एवं शृङ्गारादि नवरसरूपी रसायनोंसे सुशोभित थे।

(योगवासिष्ठ सर्ग ७७)

क्रमसे उन दोनोंकी वैराग्य एवं अध्यात्मज्ञानमें निष्ठा तथा चूडालाको यथार्थ ज्ञानसे परमात्माकी प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम! इसी प्रकार अनेक वर्षोंतक दृढ़ प्रेमसे सम्पन्न उस दम्पतीने प्रतिदिन यौवनकी अमन्द लीलाओंद्वारा रमण किया। यों एकके बाद एक करके अनेक वर्ष बीत गये और फूटे हुए घड़ेसे जलके क्षय होनेकी भाँति धीरे-धीरे तारुण्यका क्षय होते देख उन दोनोंने विचार किया—'समुद्रकी तरङ्गोंके समान चञ्चल, क्षणभङ्गुर शरीरसे व्यवहार करनेवाले जीवका पके हुए फलके पतनकी तरह मरण अवश्यम्भावी है। अब इस देहमें वृद्धावस्था आनेकी तैयारी कर रही है; क्योंकि आयु निरन्तर क्षीण होती जाती है। यह जीर्ण जीवन इन्द्रजालके सदृश असत्य ही है। यह शरीर वर्षाकालमें जलके बुद्बुदकी भाँति क्षणभरमें ही विलीन हो जानेवाला है। विचार करनेसे जगत्‌का यह व्यवहार कदली-गर्भके सदृश निस्सार ही सिद्ध होता है। इस संसारमें ऐसी कौन वस्तु है, जो शुभ, सुस्थिर एवं अत्यन्त सुन्दर हो, अर्थात् कोई भी नहीं है।' उस दम्पतीने इस प्रकार निश्चय करके संसाररूपी व्याधिकी असली औषध अध्यात्मशास्त्रका दीर्घकालतक विवेकपूर्वक विचार किया। केवल आत्मज्ञानसे ही संसाररूपी महामारी शान्त हो जाती है, यह निर्णयकर वे दोनों आत्माका ज्ञान सम्पादन करनेमें तत्पर हो गये। अध्यात्मज्ञानमें ही उनका चित्त लग गया था। प्राण भी उसीमें लगे थे। उसीमें उनकी निष्ठा थी। अध्यात्मज्ञानका ही उन्होंने आश्रय लिया था। वे उसीकी अर्चनामें लगे रहते थे। उनकी इच्छा भी अध्यात्मज्ञानकी ही रहती थी और उस

समय इस संसारसे वे दोनों विरक्त हो गये थे। उन्होंने अध्यात्मज्ञानमें ही दृढ़ अभ्यास बढ़ा लिया था। वे एक-दूसरेको अध्यात्मज्ञानका ही प्रबोध कराते थे। उनकी प्रीति उसी ज्ञानमें थी एवं परस्पर उनका समस्त आरम्भ उसीमें होता था।

तदनन्तर वह चूडाला अध्यात्मविषयको जाननेवाले महात्माओंके मुखसे संसार-दुःखसमुद्रसे पार करनेमें समर्थ आत्मज्ञानोपयोगी मनोहर पदक्रमोंसे संयुक्त शास्त्रार्थोंका निरन्तर श्रवण करके बाह्य शरीरके व्यापारोंसे उपरत और उज्ज्वल उग्रबुद्धिसे युक्त हो अपनी आत्माके विषयमें इस प्रकार अहर्निश विचार करने लगी।

'अब मैं स्वयं विवेचन करके अपने-आपका पता लगाती हूँ कि मैं क्या हूँ तथा यह संसाररूप मोह किसको, कैसे, कहाँसे प्राप्त हुआ है। यह देह तो जड है; इसलिये देह मैं नहीं हूँ, यह अटल निश्चय है। हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रिय-समुदाय भी इस शरीरसे अभिन्न अवयवरूप ही है। कभी अवयव और अवयवीमें भेद नहीं होता, इसलिये वे भी जड ही हैं। ज्ञानेन्द्रिय-समुदाय भी शरीरावयवरूप ही है, इसलिये वह भी जड ही दीख पड़ता है। संकल्पात्मक शक्ति रखनेवाला जो मन है, उसे भी मैं जड ही मानती हूँ; क्योंकि ज्ञानेन्द्रियाँ मनसे ही प्रेरित होती हैं। जैसे गोफनसे पाषाण प्रेरित होता है, वैसे ही मन भी बुद्धिके निश्चयोंसे प्रेरित होता है; इस तरह निश्चयरूपा बुद्धि भी जड ही है, यह अटल निश्चय है। अहंकार भी सारशून्य तथा मुर्देके सदृश है, इसलिये जड ही है; क्योंकि बुद्धि अहंकारसे प्रेरित होती है। अहंकार भी जड ही है; क्योंकि वह जीवात्मासे अध्यस्त है। यह चेतन जीव प्राणवायुरूप उपाधिसे उपहित हुआ हृदयमें रहता है। वह

परमात्माका अंश होनेके कारण परमात्माकी सत्तासे ही सत्तावान् है। चेतनस्वरूप आत्मा मिथ्या जड विषयोंके साथ तादात्म्य एवं संसर्गका अध्यास करके ही जड-जैसा बन जाता है और अपने असली शुद्ध चिन्मय स्वरूपको भूल जाता है। चेतन जीवात्माकी विषयोंके साथ एकाग्रता होनेपर वह एक क्षणमें अपने स्वरूपको भूलकर तत्स्वरूप हो जाता है। इस प्रकार जब विषयोंके सम्मुख होनेसे यह चेतन जीवात्मा जड, शून्य, मिथ्याके समान हो जाता है, तब चिन्मय परमात्माके द्वारा प्रबोधित किया जाता है।'

इस प्रकार विचारकर फिर उस चूडालाने यह सोचा कि किस उपायसे यह जीवात्मा प्रबुद्ध हो। बहुत समयके बाद उसने आत्मतत्त्वको जान लिया और वह कहने लगी—'अहो ! बड़े आनन्दका विषय है कि दीर्घकालके बाद मुझे उस निर्विकार जाननेयोग्य परमात्माके स्वरूपका अनुभव हो गया, जिसे जान लेनेपर पुरुष फिर उससे च्युत नहीं होता। वास्तवमें एक महान् चेतन परमात्मा ही इस संसारमें सत्यरूपसे विराजमान है। उसको महासत्ता भी कहते हैं। यह निष्कलङ्क, समरूप, विशुद्ध और अहंकाररहित है। उसका स्वरूप शुद्ध विज्ञान ही है। वह परम मङ्गलमय केवल सत्यस्वरूप है। वह अपने परमानन्दस्वरूपसे कभी विचलित नहीं होता। एक बार उसका साक्षात्कार हो जानेपर वह फिर सदा प्रत्यक्ष रहता है, उसका कभी अभाव नहीं होता। वह ब्रह्म, परमात्मा आदि नामोंसे कहा गया है। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयरूप त्रिपुटी इस परमात्मासे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। वह चेतन परमात्मा ही मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि पदार्थोंके रूपमें प्रकट होकर क्रियाशील होता है। जैसे समुद्रके जलमें तरङ्ग आदि वास्तवमें

उत्पन्न न हुए भी उत्पन्न हुए-से प्रतीत होते हैं, वैसे ही महाचेतनमें जगत् वास्तवमें उत्पन्न न होते हुए भी उत्पन्न हुआ-सा प्रतीत होता है। इस नित्य चिन्मय परमात्माके जन्म, मरण, सद्गति, असद्गति या नाशकी कहीं सम्भावना ही नहीं है। यह परमात्मा अच्छेद्य, अदाह्य और परम विशुद्ध है। अहा ! मैं बहुत कालके बाद शान्त होकर सब ओरसे परम निर्वाणपदको प्राप्त हुई हूँ। कुम्हार आदिके द्वारा बनायी गयी मृत्तिकाकी सेना जैसे मृत्तिकारूप ही है, वैसे ही सुर, असुर आदिसे युक्त यह विश्व स्वभावतः परब्रह्मस्वरूप ही है तथा द्रष्टा एवं दृश्यरूप सत्ता भी एक चैतन्य-स्वरूप ही है। यह ऐक्य है, यह द्वैत है; यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ इत्यादि भ्रमजनित मोह क्या चीज है और वह किस तरह, किसको, कहाँसे और कहाँ हुआ है ? अर्थात् किसीको कहीं नहीं। यह सब मिथ्या है। अतः मैं अपने अंदर अनन्त पारमार्थिक स्वरूपको अनायास प्राप्तकर अब शान्तरूपसे स्थित हूँ। न तो इदं है, न अहं है और न दूसरा है एवं न भाव है और न अभाव ही है। सब कुछ शान्त, निरालम्ब केवल परब्रह्मस्वरूप परमात्मा ही है।' इस प्रकार परमात्माके मननमें परायण वह चूडाला यथार्थ ज्ञानके द्वारा उस परमात्माके वास्तविक स्वरूपको तत्त्वसे जानकर राग, भय, मोह आदि अज्ञान-विकारोंके शान्त होनेसे उसी प्रकार शान्त हो गयी, जैसे शरत्-कालमें आकाश बादलोंसे रहित हो जाता है।

(सर्ग ७८)

चूडालाको अपूर्व शोभासम्पन्न देखकर राजा शिखिध्वजका प्रसन्न होना और उससे वार्तालाप करना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम ! चूडाला संसारके सम्बन्धों, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों, राग और इच्छाओंसे रहित हो गयी थी। वह न किसी पदार्थका ग्रहण करती थी और न किसीका त्याग करती थी। केवल न्यायसे प्राप्त आचरण करती थी। संसाररूपी महासमुद्रको वह पार कर गयी थी। संदेहरूपी जालसे मुक्त हो गयी थी। वह परमात्माके महान् लाभसे परिपूर्ण हो गयी थी। इस प्रकार सुन्दर वर्णवाली शिखिध्वजकी श्रेष्ठ धर्मपत्नी वह चूडाला थोड़े ही कालमें जाननेयोग्य परमात्माको यथार्थ जान गयी। अपने विवेकके दृढ़ अभ्यास-बलसे परमात्माका यथार्थ अनुभव हो जानेपर वह परम शोभा पाने लगी। किसी समय उस सुन्दर अङ्गोंवाली चूडालाको अपूर्व शोभासे युक्त देख राजा शिखिध्वजने हँसते हुए कहा—'प्रिये ! इस समय तुम वैसे ही अत्यन्त सुशोभित हो रही हो, जैसे तुमने अमृतका सार पी लिया हो या अलभ्य परमात्मपदकी प्राप्ति कर ली हो अथवा आनन्दप्रवाहसे तुम परिपूर्ण हो गयी हो। इस समय मैं तुम्हारे चित्तको भोग-लालसासे रहित, शान्त, विवेकसे बलिष्ठ, समताको प्राप्त, गम्भीर और चञ्चलतारहित देख रहा हूँ। तुम्हारे मनके साथ किसी भी विभवानन्दकी वस्तुसे उपमा नहीं दी जा सकती। भद्रे ! क्या तुमने अमृत पी लिया है या किसी साम्राज्यकी प्राप्ति कर ली है या मन्त्रके प्रयोग या योगके साधनसे अमरता प्राप्त कर ली है ? नील कमलके सदृश नेत्रोंवाली ! क्या तुमने राज्य, चिन्तामणि और त्रैलोक्यसे भी बढ़कर किसी अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति कर ली है ?'

चूडालाने कहा—आर्य ! इस समस्त विनाशशील संसारका त्यागकर इससे भिन्न सत्-असत्-स्वरूप सर्वात्मक परमात्माका मैंने आश्रय लिया है, इसीलिये मैं परम श्रीसम्पन्न होकर स्थित हूँ। एकमात्र आकाश-सदृश विमल अद्वितीय केवल हृदयरूप चिन्मय ब्रह्ममें अकेली ही मैं रमण करती हूँ। राजलीलाओंमें मैं कभी रमण नहीं करती; इसलिये मैं परम श्रीसम्पन्न होकर स्थित हूँ। मूल्यवान् आसन, उद्यान और घरोंमें रहकर भी मैं परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहती हूँ तथा विषय-भोगोंसे दूर हूँ; इसीलिये मैं परम शोभायुक्त हुई स्थित हूँ। मैं सुख-सम्पत्ति नहीं चाहती, न अर्थ और अनर्थको ही चाहती हूँ; दूसरी किसी प्रकारकी स्थिति भी नहीं चाहती। जो कुछ न्यायसे प्रारब्धानुसार प्राप्त होता है, उसीसे संतुष्ट रहती हूँ। इसीसे मैं परम श्रीसम्पन्न होकर स्थित हूँ। राग और विद्वेषको विनष्ट कर देनेवाली आत्मविषयक बुद्धि और शास्त्रदृष्टिरूपी सखियोंके साथ मैं रमण करती हूँ, इसलिये मैं परम शोभासम्पन्न होकर स्थित हूँ। (सर्ग ७९)

राजा शिखिध्वजका चूडालाके वचनोंको अयुक्त बतलाना, चूडालाका एकान्तमें योगाभ्यास करना एवं श्रीरामचन्द्रजीके पूछनेपर श्रीवसिष्ठजीके द्वारा कुण्डलिनीशक्तिका तथा विभिन्न शरीरोंमें जीवात्माकी स्थितिका वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! परमात्माके स्वरूपमें स्थित उस चूडालाके इस प्रकार कहनेपर उसके वचनोंका रहस्य न जाननेके कारण राजा शिखिध्वज हँसते हुए कहने लगे।

शिखिध्वजने कहा—सुन्दरी राजपुत्रि ! तुम बालबुद्धि हो। तुम्हारा वचन युक्तिसंगत नहीं है। तुम जिस प्रकार राजलीलाओंमें रमण करती आयी हो, उसी प्रकार रमण किया करो। भद्रे ! बतलाओ तो सही, जो वस्तु आकार-सामान्यका परित्याग करके कभी भी प्रत्यक्ष न होनेवाली निराकारताको प्राप्त हो चुकी है, वह प्रत्यक्ष और अस्तित्वसे शून्य वस्तु कैसे शोभित हो सकती है ? धनादि समस्त भोग-वस्तुओंका परित्याग करके जो एक शून्य आकाशमें ही रमण करता है, वह शोभित होता है—यह कहना कैसे संगत हो सकता है ? जो धीरबुद्धि पुरुष वस्त्र, भोजन, शय्या आदि सारे साधनोंका परित्याग करके अकेला स्वरूपमें ही स्थित रहता है, वह कैसे शोभित हो सकता है ? इसलिये सुन्दरी ! तुम बाला हो, मुग्धा हो और चपला हो। विलासिनि ! अनेक प्रकारके आलाप-विलासोंसे जिस तरह मैं क्रीड़ा करता हूँ, उसी तरह तुम भी क्रीड़ा करो।

राजा शिखिध्वजने इस प्रकार अपनी प्रिया चूडालाके प्रति कहकर अट्टहास करते हुए मध्याह्नमें स्नान करनेके लिये उठकर चूडालाके महलसे प्रस्थान किया। 'बड़े दुःखका विषय है कि अभीतक राजा अपने स्वरूपमें स्थित नहीं हुए हैं। मेरे वचनोंको भी वे न समझ सके'—इस प्रकारके विचारसे खिन्न हुई वह चूडाला अपने कार्यमें संलग्न हो गयी। रामभद्र ! तदनन्तर वहींपर उस प्रकारके भिन्न-भिन्न आशयसे युक्त उन दोनोंका उस समय भी पहलेकी सांसारिक क्रीड़ाओंमें उसी तरह बहुत काल चला गया। एक समयकी बात है, नित्यतृप्त और इच्छारहित चूडालाको लीलावश आकाशमें गमनागमन करनेकी स्फुरणा हुई। तब वह राजपुत्री आकाशमें गमनागमनकी सिद्धिके लिये सम्पूर्ण भोगोंकी

अवहेलना करके और निर्जन स्थानमें आकर अकेली ही एकान्तमें आसन लगाकर ऊर्ध्वगामी प्राणवायुका निरोध करनेके लिये अभ्यास करने लगी।

श्रीरामजीने कहा—प्रभो! जो अनात्मज्ञ पुरुष हैं, वे अपनी सफलताके लिये अथवा जो आत्मज्ञ हैं, वे केवल लीलाके लिये किस क्रमसे इन सिद्धियोंको सिद्ध करते हैं, वह मुझसे कहिये।

श्रीवसिष्ठजी बोले—प्रिय राघव! इस जगत्‌में सभी जगह साध्य वस्तु तीन तरहकी होती है—उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य), हेय (त्याज्य) और उपेक्षाके योग्य। सद्बुद्धे! जो वस्तु साक्षात् या परम्परासे सुखदायक होती है, वह उपादेय होती है; जो सुख-विघातक होती है, वह हेय होती है एवं जो वस्तु इन दोनोंके बीचकी होती है, वह उपेक्ष्य होती है—ऐसा अनुभवी लोगोंका कहना है। परमात्म-तत्त्वको जाननेवाले श्रेष्ठबुद्धि विद्वान्‌की दृष्टिमें जब यह सब परमात्मस्वरूप हो जाता है, तब इन तीनों पक्षोंमेंसे कोई भी पक्ष नहीं रहता। किसी समय ज्ञानी व्यवहारकालमें लीलासे ही इस समस्त जगत्‌को उपेक्षा-बुद्धिसे केवल देखता है और समाधिकालमें नहीं देखता। ऐश्वर्यादि एक ही वस्तु ज्ञानीकी दृष्टिमें उपेक्षाके योग्य, मूढ़की दृष्टिमें उपादेय और उत्तम वैराग्य-सम्पन्न पुरुषकी दृष्टिमें हेय हो जाती है। श्रीराम! आकाशगमन आदि सिद्धियोंका क्रम कैसा है, उसे तुम अब सुनो। देश, काल, क्रिया एवं द्रव्यकी अपेक्षा रखनेवाली सब तरहकी सिद्धियाँ यहाँ जीवको मोहित करती हैं। मणि, ओषधि, तप, मन्त्र और क्रियासे होनेवाली सिद्धिके क्रमका निरूपण अनावश्यक है; क्योंकि यह अध्यात्मविषयमें विघ्न ही है। कृतार्थ श्रीराम! सिद्धदेशके नामसे प्रसिद्ध श्रीशैल अथवा मेरुपर्वतपर निवास करनेवाले पुरुषको

सिद्धि होती है—इसका भी विस्तारपूर्वक वर्णन करना अध्यात्म-विषयमें हानिकर है। इसलिये शिखिध्वजकी कथाके प्रसङ्गसे प्राप्त सिद्धिरूपी फलसे युक्त इस प्राणादि वायुकी अभ्यास-क्रियाका तुम श्रवण करो। साध्य अर्थसे भिन्न पदार्थोंकी वासनाओंका त्याग करके गुदा आदि द्वारोंके संकोचसे; सिद्धादि आसन, काया, मस्तक और गर्दनकी समता, निश्चलता तथा नासिकाके अग्रभागमें दृष्टिको स्थिर करना आदि योगशास्त्रोक्त क्रियाओंसे; भोजन और आसनकी पवित्रतासे, भलीभाँति योगशास्त्रके परिशीलनसे, उत्तम आचरणसे, सज्जनोंके सङ्गसे, सर्वत्यागसे, सुखासनसे बैठकर कुछ कालतक प्राणायामके दृढ़ अभ्याससे, क्रोध-लोभ आदिके सर्वथा त्यागसे तथा भोगोंके त्यागसे एवं रेचक, पूरक और कुम्भकका अच्छी तरह अभ्यास हो जानेपर प्राणोंपर पूर्ण प्रभुत्व हो जानेसे योगीके पाँचों प्राण उसी तरह उसके अधीन हो जाते हैं, जिस तरह राजाके सेवक राजाके वशमें होते हैं।

राघव ! प्राणायामके द्वारा देहमें स्थित प्राण-अपान वायुके अपने अधीन हो जानेपर राज्यसे लेकर मोक्षपर्यन्त सभी सम्पत्तियाँ सुखसाध्य हो जाती हैं। मण्डलाकार (गोल कुण्डलाकार) से युक्त, मर्म (नाभि) स्थानमें समाश्रित सौ नाड़ियोंकी आश्रय आन्त्रवेष्टनिका (सुषुम्ना) नामकी नाड़ी है। श्रीराम ! देव, असुर, मनुष्य, मृग, नक्र, खग, कीट, पतंग आदि सब प्रकारके प्राणियोंमें वह नाड़ी स्थित है। गुदासे लेकर भौंहके बीचतक सब छिद्रोंका स्पर्श करती हुई वह सुषुम्ना नाड़ी मनकी वृत्तियोंसे भीतर चञ्चल और बाहर प्राणादिसे स्पन्दयुक्त होकर सदा स्थित रहती है। वह

कुण्डलाकार वाहिनी है, इसलिये कुण्डलिनी नामसे कही गयी है। वह सब प्राणियोंकी परमा शक्ति है तथा प्राण, इन्द्रिय, बुद्धि आदि सभी शक्तियोंकी सत्तास्फूर्तिकी निर्वाहक होनेसे सबको वेग प्रदान करनेवाली है। वही अपने मुखसे प्राणवायुको ऊपर फेंकती है और अपानको नीचे खींचती है; इसलिये सदा साँस खींचती हुई स्पन्दनमें हेतु बनी वह ऊपरकी ओर मुँह करके कुपित सर्पिणीकी तरह स्थित रहती है। यह कोमल स्पर्शवाली कुण्डलिनी कमलमें भ्रमरकी तरह देहमें जैसे-जैसे स्फुरित होती है, वैसे-वैसे अन्तःकरणमें ज्ञान होता है। उस कुण्डलिनीमें हृदयकोशकी समस्त नाड़ियाँ सम्मिलित हैं। वे सब नाड़ियाँ सागरमें नदियोंकी तरह उसीसे बारम्बार उत्पन्न होती हैं तथा उसीमें विलीन होती जाती हैं। प्राणरूपसे उसके ऊर्ध्वगमनमें उत्सुक होने तथा अपानरूपसे अधःप्रवेशकी ओर उन्मुख होनेसे एक वही सम्पूर्ण ज्ञानोंकी साधारण बीज कही गयी है।

निष्पाप श्रीराम ! पशुओंसे लेकर स्थावर आदि देहोंमें तथा मनुष्यादि शरीरोंमें जिस तारतम्यसे जीवात्मा रहता है, यह मैं तुमसे क्रमशः कहता हूँ, सुनो। यह सत्य, नित्य, चेतन, विकारशून्य और अनामय जीवात्मा अपनी कल्पनासे पञ्चभूतोंके रूपसे स्थित होता है। पूर्वकृत कर्मोंके अनुसार जीवात्माकी कल्पनासे पञ्चभूत मनुष्यादि देहभावकी, तिर्यग् देहभावकी, सुवर्णभावकी, देशादिभावकी और द्रव्यादिभावकी प्राप्ति होती है। रघुनन्दन ! इस तरह यह संसार केवल पञ्चभूतका विकासमात्र ही है और वह चेतन जीवात्मा ही यहाँ सर्वत्र विद्यमान है। वही जीवात्मा केवल पञ्चभूतोंके सम्बन्धसे मनुष्यादि देहोंमें बौद्धिक ज्ञानकी

विशेषताके कारण चेतन-प्रधान, कहीं (तिर्यगादिमें) जड-चेतन उभय-प्रधान और वृक्ष, पहाड़ आदि स्थावर योनियोंमें जड-प्रधान रहता है। निष्पाप श्रीराम! देहादि आकारमें परिणत पञ्चभूत जीवका संकल्प होनेके कारण जीव कहलाता है और पहाड़ आदि तो केवल जड ही हैं एवं वृक्षादि स्थावर बाहरकी वायुसे स्पन्दनशील (चेष्टावान्) होते हैं। पञ्चभूतसमूहात्मक मेरु पर्वत आदि तो तृणकी भाँति जड हैं, किंतु ये वृक्ष, कीट आदि स्थावर-जंगम प्राणी चेतन हैं। इनमें वृक्ष आदि स्थावर जातिकी वासना निद्राग्रस्त मनुष्यकी वासनाकी भाँति प्रसुप्त है तथा मनुष्य और देवता आदिमें बुद्धिकी अधिकताके कारण उनकी वासना प्रबुद्ध है। पशु, पक्षी आदि मलिन वासनासे युक्त हैं, किंतु मनुष्योंमें कुछ मोक्षगामी मनुष्य वासनाओंसे रहित हैं; क्योंकि वे विवेकको प्राप्त हो गये हैं। अतः वे इस संसारमें पुनः जन्म-धारण नहीं करते; किंतु इनसे भिन्न अविवेकी मनुष्य बार-बार संसारमें भ्रमण करते रहते हैं। (सर्ग ८०)

★

आधि और व्याधिके नाशका तथा सिद्धिका और सिद्धोंके दर्शनका उपाय

श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—मुनीश्वर! इस शरीरमें आधि (मानसिक) और व्याधि (शारीरिक) रोग किससे उत्पन्न होते हैं तथा किससे विनष्ट होते हैं? यह मुझको समझाकर कहिये।

श्रीवसिष्ठजीने कहा—श्रीराम! आधि और व्याधि—ये दोनों दुःखके कारण हैं। औषधादिके द्वारा इनकी निवृत्तिसे सुख प्राप्त होता है तथा ज्ञानके द्वारा इनका समूल नाश होता है। वही मोक्ष

****

कहलाता है। शरीरके अन्दर आधि और व्याधियाँ कभी परस्पर एक-दूसरेकी कारण बनकर उत्पन्न होती हैं अर्थात् कभी आधिसे व्याधि हो जाती है और कभी व्याधिसे आधि हो जाती है। कभी आधि-व्याधि—दोनों एक साथ हो जाती हैं और कभी सुखके अनन्तर दुःखरूप ये आधि-व्याधि क्रमसे उत्पन्न होती हैं। शारीरिक दुःखको व्याधि कहते हैं और वासनामय मानसिक दुःखको आधि। श्रीराम ! यह जान लेना चाहिये कि अज्ञान ही इन दोनोंका मूल कारण है। यथार्थ ज्ञान होनेपर इनका अवश्य विनाश हो जाता है। यथार्थ परमात्म-ज्ञान और इन्द्रियनिग्रहके अभावसे, राग-द्वेषमें फँस जानेसे तथा यह प्राप्त हो गया, यह प्राप्त होना शेष है—इस तरह रात-दिन चिन्ता करनेसे जडताके कारण महामोहदायिनी आधियाँ (मानसिक व्यथाएँ) उत्पन्न होती हैं। प्रबल इच्छाओंके पुनः-पुनः स्फुरित होनेसे, मूर्खतासे, चित्तके न जीतनेसे, दुष्ट अन्न खानेसे तथा श्मशान आदि निकृष्ट स्थानोंमें निवास करनेसे शरीरमें व्याधियाँ (शारीरिक रोग) उत्पन्न होती हैं। आधी रातमें तथा प्रदोषादि कालमें भोजन एवं मैथुनादि व्यवहारसे, दुष्कर्म करनेसे, दुर्जनोंकी सङ्गतिरूप दोषसे तथा विष, सर्प, व्याघ्र और चोर आदिका मनमें भय होनेसे शरीरमें व्याधि उत्पन्न होती है। नाड़ियोंके छिद्रोंमें अन्नके रसका प्रवेश न होनेके कारण नाड़ियोंके क्षीण होनेसे अथवा उन छिद्रोंमें अन्नके रस एवं वायु आदिके अधिक प्रवेश हो जानेके कारण नाड़ियोंके एकदम भर जानेसे, कफ, पित्त आदिके प्रकोपसे, प्राण तथा शरीरके व्याकुल हो जाने आदि अनेक दोषोंके द्वारा रोग उत्पन्न होता है।

अभिमत पदार्थोंकी प्राप्ति होनेसे व्यावहारिक व्याधियाँ तथा

आधि (अज्ञान) के क्षयसे आधिसे उत्पन्न मानसिक व्याधियाँ भी भलीभाँति नष्ट हो जाती हैं। राघव ! आत्मज्ञानके बिना जन्मादि विकारोंकी जड़ व्याधि (अज्ञान) नष्ट नहीं होती, क्योंकि रज्जुके यथार्थ ज्ञानसे ही रज्जुमें प्रतीत होनेवाला सर्प नष्ट होता है। जैसे वर्षाकालकी नदी अपने तटके सभी वृक्षोंको जड़से उखाड़ फेंकती है, वैसे ही सम्पूर्ण आधि और व्याधियोंको जड़से उखाड़ फेंकनेवाला जन्मादि विकारोंकी मूल अज्ञानरूपी व्याधिका क्षय ही है, जो परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे होता है। सामान्य व्याधियाँ तो आयुर्वेदोक्त ओषधियों तथा मन्त्रादि शुभ कर्मोंसे अथवा वृद्धोंकी परम्परासे कथित औषधोंसे नष्ट हो जाती हैं। श्रीराम ! तीर्थोंमें स्नान, मन्त्र, औषध आदि उपाय, वृद्धजनोंसे प्राप्त हुई ओषधियाँ तथा आयुर्वेदशास्त्रको तो आप स्वयं खूब जानते हैं। इनसे अतिरिक्त और मैं क्या आपको उपदेश दूँ।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—गुरुवर ! आधिसे व्याधि कैसे उत्पन्न होती है और औषधके अतिरिक्त मन्त्र, पुण्य आदिरूप युक्तिसे वह कैसे नष्ट होती है ?

श्रीवसिष्ठजी बोले—श्रीराम ! मानसिक पीड़ाओंसे चित्तके व्याकुल हो जानेपर शरीरमें क्षोभ हो जाता है; इसलिये क्रोधी मनुष्य अपने आगेका उचित मार्ग नहीं देख पाता। वह उचित मार्गको न देखकर कुमार्गकी ओर उसी प्रकार दौड़ता है, जिस प्रकार बाणसे घायल हुआ हरिण अपने स्वाभाविक मार्गको छोड़कर अन्य मार्गकी ओर दौड़ता है। प्राणवायुके विषम बहनेपर कफ, पित्त आदिके भर जानेसे नाड़ियाँ विषम स्थितिको प्राप्त हो जाती हैं, जैसे राजाके अव्यवस्थित हो जानेपर वर्णाश्रमकी

मर्यादा विषम-स्थितिको—विशृङ्खलताको प्राप्त हो जाती है। प्राणवायुके संचारका क्रम बिगड़ जानेसे खाया हुआ अन्न कुजीर्णता, अजीर्णता या अतिजीर्णतारूप दोषको ही प्राप्त होता है। इस तरह आधिसे व्याधि उत्पन्न होती है और आधिके अभावसे व्याधि भी नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार मन्त्रोंसे व्याधियाँ विनष्ट होती हैं—वह भी क्रम तुम सुनो। जिस तरह हर्रेका फल खानेसे स्वाभाविक ही दस्त लग जाते हैं, उसी तरह वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल आदिके बीजरूप य र ल व आदि मन्त्रोंके वर्ण भी मान्त्रिक भावनाके वशसे नाड़ियोंमें रोगाकारमें परिणत अन्नरसोंका उत्सारण, पाचन आदि कार्य करते हैं। साधु-सेवारूप पवित्र पुण्यक्रियासे मन निर्मलताको प्राप्त होता है। चित्तके शुद्ध हो जानेपर शरीरमें आनन्द बढ़ता है। अन्तःकरणकी शुद्धिसे ये प्राणवायु अपने क्रमसे बहते हैं और अन्नका उचित परिपाक करते हैं। इससे सब व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। श्रीराम ! इस प्रकार आधि और व्याधिके नाश तथा उत्पत्तिके क्रमका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया। अब तुम प्रकृत प्रसंगको सुनो।

राघव ! पुर्यष्टक नामक लिङ्गात्मक जीवकी आधारभूत कुण्डलिनीको तुम सुगन्धकी आधारभूत पुष्पमञ्जरीकी भाँति जानो। पूरकके अभ्याससे जब प्राणी कुण्डलिनीको भर करके यानी कूर्माकार नाड़ीमें प्राणवायुको रोककर समरूपसे स्थित होता है, तब मेरु पर्वतके समान स्थिरता अर्थात् भैरवी सिद्धि तथा कायाकी गुरुता (गरिमा नामक सिद्धि) उसे प्राप्त होती है। जिस समय पूरकसे पूर्ण शरीरके भीतर मूलाधारसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त लम्बा करके प्राणवायुको ऊपर खींचकर प्राणवायुके निरोधसे उत्पन्न

गरमी और तत्प्रयुक्त शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन करनेके लिये संवित् (कुण्डलिनी) ऊपरकी ओर पहुँचायी जाती है। उस समय प्राणवायुको ऊपर खींचनेसे दण्डके सदृश लम्बी होकर वह कुण्डलिनी देहमें बँधी हुई लताके समान सब नाड़ियोंको अपने साथ लेकर अधिक अभ्यास होनेके कारण सर्पिणीकी भाँति शीघ्र ऊपर चली जाती है। उस समय नाड़ियोंमें वायु भर जानेसे पैरसे लेकर मस्तकतक बिलकुल हलके हुए इस शरीरको कुण्डलिनी इस प्रकार ऊपर उठा ले जाती है, जिस प्रकार पवनसे पूर्ण जलगत भाथी मनुष्यको जलके ऊपर उठा ले जाती है, यही योगियोंका आकाशगमन है। इस प्रकार अभ्याससे युक्त आकाशगामी योगसे* अर्थात् आकाशके साथ शरीरका सम्बन्ध रखनेके लिये किये गये संयमरूप योगसे योगी लोग ऊर्ध्वगतिको प्राप्त हो जाते हैं। जिस समय दूसरी नाड़ियोंके व्यापारको रोक देनेवाले रेचक प्राणायामके प्रयोगसे ऊपरकी ओर खींच ली गयी कुण्डलिनीरूपा प्राणशक्ति सुषुम्ना नाड़ीके भीतर प्राणवायुके प्रवाहसे मस्तकके दोनों कपालोंकी संधिरूप कपाट (किवाड़) के बारह-बारह अंगुल स्थानमें मुहूर्तभरके लिये स्थित रहती है, उस समय आकाशगामी सिद्धोंके दर्शन होते हैं;† किन्तु अज्ञानका

---

* इसका वर्णन योगदर्शनमें इस प्रकार आया है—

'कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाऽऽकाशगमनम्।'

(योग० विभूति० ४२)

'शरीर और आकाशके सम्बन्धमें संयम करनेसे अथवा हलकी वस्तु (रूई आदि) में संयम करनेसे आकाशमें चलनेकी शक्ति आ जाती है।'

† योगदर्शनमें बतलाया गया है—

'मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्।' (योग० विभूति० ३२)

'सिरके कपालमें एक छिद्र है, इसीको ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, वहाँ जो प्रकाशमयी ज्योति है उसमें संयम करनेवालेको पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें विचरण करनेवाले सिद्धोंके दर्शन होते हैं।'

आश्रय करनेवाला मलिन पुरुष इन्द्रियोंसे या दूसरे किसी अदिव्य उपायसे या इस पृथ्वीपर विचरण करनेवाला कोई भी पुरुष वायुस्वरूप आकाशगामी सिद्धोंको कभी नहीं देख सकता। परंतु राघव ! योगके अभ्याससे मनके संस्कृत हो जानेपर विषयोंसे दूर संस्थित बुद्धिरूपी नेत्रसे स्वप्नकी भाँति आकाशगामी सिद्ध दिखायी देते हैं और वे अभीष्ट अर्थोंको भी देते हैं। जिस प्रकार स्वप्नमें पदार्थोंका अवलोकन होता है, उसी प्रकार सिद्धोंके भी दर्शन होते हैं। केवल स्वप्नकी अपेक्षा विशेषता यही है कि सिद्धोंकी प्राप्तिमें संवाद, वरदान आदि फलरूप पदार्थोंकी प्राप्ति होती है।

रेचक प्राणायामके अभ्यासरूप युक्तिसे मुखसे बारह-बारह अंगुलपरिमित देशमें प्राणको चिरकालतक स्थित रखनेपर योगी अन्य शरीरमें प्रवेश कर सकता है। सारे शरीरमें प्रदीप्त उस जठराग्निसे स्वभावतः शीत-वातात्मक वह शरीर ऐसे ही उष्णताको प्राप्त होता है, जैसे सूर्यसे तीनों लोक। तारोंके आकारके समान तथा हृदयपद्ममें सुवर्ण-भ्रमरके सदृश वह तेज इस शरीरमें चारों ओर विचरता है, जो योगियोंकी चिन्त्य-दशाको प्राप्त है अर्थात् योगी लोग जिसकी उपासना करते हैं। इस प्रकारसे उपासित वह तेज प्रकाशस्वरूप ज्ञान प्रदान करता है, जिससे लाख योजनकी दूरीपर स्थित वस्तु भी सदा आँखोंके सामने दिखायी देती है। उष्ण-प्रकृति प्राणवायु अग्निस्वरूप है तथा शीतल-प्रकृति अपान-वायु चन्द्रस्वरूप है। छाया और घामकी भाँति ये दोनों मुखरूप मार्गमें स्थित रहते हैं। (सर्ग ८१)

ज्ञानसाध्य वस्तु और योगियोंकी परकाय-प्रवेश-सिद्धिका वर्णन

श्रीवसिष्ठजीने कहा—श्रीराम! योगके द्वारा साध्य अणिमादि पदार्थोंका साधन तुम सुन चुके। अब श्रवण-भूषण ज्ञानके द्वारा साध्य विषयको सुनो। इस संसारमें एक अद्वितीय, शुद्ध, सौम्य, अनिर्देश्य, सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर और शान्तिमय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही है। न यह दृश्य जगत् है, न इसकी कोई क्रिया है। यह जीव इस मिथ्या शरीरको संकल्प-भ्रमसे उसी प्रकार देखता है, जिस प्रकार बालक उद्दण्ड प्रेतको। जब प्रज्वलित ज्ञानदीपसे उत्तम प्रकाश हो जाता है, तब इस जीवका संकल्पमोह उसी तरह विनष्ट हो जाता है, जिस तरह शरत्कालमें मेघ। जागनेपर जैसे प्राणी स्वप्नके संसारको नहीं देखता, वैसे ही सच्चिदानन्द परमात्माका साक्षात्कार हो जानेपर जीवात्मा देहको आत्मबुद्धिसे नहीं देखता। अतात्त्विक शरीर आदिमें तात्त्विक भावनासे यह जीव देहसे आवृत होकर स्थित रहता है; किंतु एक ब्रह्मतत्त्वकी भावनासे देहसे रहित, श्रीमान् और परम सुखी हो जाता है। अनात्म शरीर आदिमें जो आत्माकी भावना है, वह हृदयका बड़ा भारी अन्धकार है। वह सूर्य आदिके प्रकाशसे दूर नहीं किया जा सकता। वह अज्ञान-अन्धकार तो परमात्मामें ही आत्मभावनासे—'सर्वव्यापक, निरञ्जन और निर्मल सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं ही हूँ'—इस यथार्थ ज्ञानरूपी सूर्यसे ही नष्ट होता है।

अन्य तत्त्वज्ञानी योगी लोग जिस पदार्थकी जिस रीतिसे भावना करते हैं, वे उस पदार्थको उसी रीतिसे शीघ्र अपनी उस दृढ़ भावनाके बलसे देख लेते हैं। किंतु राघव! दृढ़ भावनाके अनुसन्धानसे विमूढ़ अज्ञानी प्राणी तो विषको अमृतके समान और

अमृतको भी विषके समान समझ लेते हैं। इस प्रकार दृढ़ भावनासे जिस विमूढ़ अज्ञानी प्राणीके द्वारा जिस पदार्थकी जिस रीतिसे भावना की जाती है, उसी समय वह प्राणी वही बन जाता है, यह संसारमें देखा भी जाता है। जैसे स्वप्नका संसार स्वप्नमें प्रत्यक्षकी ज्यों दीखता है; वैसे ही सत्यकी भावनासे देखा गया यह शरीर हो जाता है और असत्यकी भावनासे विवेकपूर्वक देखा गया यह शरीर शून्यताको—अभावको प्राप्त हो जाता है।

साधुस्वभाव श्रीराम ! अणिमादि पदकी प्राप्तिमें तुमने इस प्रकारसे ज्ञानयुक्ति तो सुन ली। अब तुम यह दूसरी युक्ति सुनो। जिस तरह वायु पुष्पमेंसे गन्ध खींचकर उसका घ्राणेन्द्रियके साथ सम्बन्ध कर देता है, उसी तरह योगी रेचकके अभ्यासरूप योगसे कुण्डलिनीरूप घरसे बाहर निकलकर ज्यों ही दूसरे शरीरमें जीवका सम्बन्ध करता है, त्यों ही यह शरीर परित्यक्त हो जाता है। जीव-रहित यह देह चेष्टाओंसे रहित होकर काठ और मिट्टीके ढेलेके सदृश पड़ा रहता है। जैसे सिंचन करनेवाला पुरुष जलपूर्ण कुम्भसे जिस वृक्ष और लताको सींचनेकी इच्छा करता है, उसे ही सींचता है, वैसे ही अपनी रुचिके अनुसार देह, जीव, बुद्धि, स्थावर और जङ्गम सबमें उनकी सम्पत्तिका भोग करनेके लिये जीवको प्रविष्ट किया जाता है।

उक्त प्रणालीसे परदेहमें सिद्धिश्रीका उपभोग कर स्थित हुआ योगी यदि अपना पहला शरीर विद्यमान रहा तो उसमें पुनः प्रविष्ट हो जाता है और यदि न रहा तो दूसरे शरीरमें जबतक उसकी रुचि रहती है, तबतक उसमें प्रविष्ट होकर स्थित रहता है। अथवा देहादि सम्पूर्ण कल्पित पदार्थोंको और जगत्को सर्वव्यापी

ज्ञानसे परिपूर्ण करके पूर्णरूपसे स्थित रहता है। श्रीराम ! योगरूप ऐश्वर्यसे सम्पन्न चेतन जीवात्मा सदा प्रकट दोषशून्य परमात्मतत्त्वको जानकर जो भी कुछ जैसा चाहता है, वैसा ही उसे तत्काल प्राप्त कर लेता है। वास्तवमें अनावरणतारूप उत्तम पद ही यथार्थ पद है, यों अनुभवी लोग कहते हैं। (सर्ग ८२)

―― ★ ――

चूडालाकी सिद्धिका वैभव, गुरूपदेशकी सफलतामें किराटका आख्यान, शिखिध्वजका वैराग्य, चूडालाका उन्हें समझाना, राजा शिखिध्वजका आधी रातके समय राजमहलसे निकलकर चल देना और मन्दराचलके काननमें कुटिया बनाकर निवास करना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! इस प्रकार निरन्तर योगका अभ्यास करनेवाली वह राजरानी सती-साध्वी चूडाला अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंके गुणोंके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो गयी। मोह आदि दोषों तथा त्रिविध तापोंका उपशम हो जानेसे उसका हृदय गङ्गाजीकी भाँति निर्मल और शीतल हो गया। वह कभी आकाशमार्गसे गमन करती थी, कभी समुद्रके भीतर द्वीपोंमें पहुँच जाती थी और कभी स्वेच्छानुसार भूतलपर विचरण करती थी। यों बिजलीकी प्रभाके समान चमकीले आभूषणोंसे विभूषित वह सुन्दरी चूडाला आकाशगामिनी होकर यत्र-तत्र घूमने-फिरने लगी। वह मोतियोंमें प्रविष्ट हुए धागेकी भाँति काष्ठ, तृण, पत्थर, भूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि सभी पदार्थोंमें निर्विघ्नतापूर्वक प्रवेश कर जाती थी। इस प्रकार उसने मेरुगिरिके शिखरोंपर, लोकपालोंके नगरोंमें और दिशा एवं आकाशके मध्यमें स्थित सारे भुवनोंमें सुखपूर्वक विचरण किया

तथा पशु, पक्षी, भूत-पिशाच आदि एवं नाग, देवता, असुर, विद्याधर, अप्सरा और सिद्धोंके साथ सम्भाषण आदि व्यवहार भी किया।

चूडाला अपने स्वामी राजा शिखिध्वजको अनेक बार यत्नपूर्वक ज्ञानामृतका उपदेश करती, परंतु उनकी समझमें कुछ भी नहीं आता। जैसे बालकको विद्याके गुणका अनुभव नहीं होता, वैसे ही इतने लम्बे कालतक सम्पर्कमें रहनेपर भी राजा शिखिध्वज यह न जान सके कि मेरी पत्नी चूडाला ऐसी गुणशालिनी है। चूडालाने भी अनधिकारी समझकर आत्मशान्तिकी प्राप्तिसे रहित राजाके सामने अपनी अणिमादि सिद्धियोंके ऐश्वर्यको उसी प्रकार प्रकट नहीं किया, जैसे शूद्रको यज्ञक्रिया नहीं दिखलायी जाती।

श्रीरामजीने पूछा—ऐश्वर्यशाली गुरुदेव ! इतनी बड़ी सिद्ध-योगिनी चूडालाके प्रयत्नसे भी जब राजा शिखिध्वज ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके, तब भला, अन्य साधारण व्यक्तिको ज्ञानकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

श्रीवसिष्ठजीने कहा—रघुकुलभूषण राम ! गुरुद्वारा उपदेश प्राप्त करनेका क्रम केवल शास्त्रमर्यादाका पालनमात्र है। ज्ञान-प्राप्तिका कारण तो शिष्यकी विश्वासयुक्त विशुद्ध प्रज्ञा ही है; क्योंकि जाननेयोग्य ब्रह्म शास्त्रोंके श्रवणसे अथवा किसी पुण्य-कर्मसे नहीं जाना जाता, उसे तो आत्मा ही जानता है।

श्रीरामजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! यदि ऐसी ही बात है कि गुरूपदेश आत्मज्ञानमें कारण नहीं है तो जगत्‌में जो यह क्रम प्रचलित है कि आत्मज्ञानका कारण गुरूपदेश है, यह कैसे उचित होगा ?

श्रीवसिष्ठजीने कहा—राघव ! (मैं इस विषयमें एक दृष्टान्त

देता हूँ, सुनो—) विन्ध्याचलके जंगली प्रदेशमें एक किराट रहता था। वह धन-धान्यसम्पन्न होनेपर भी अत्यन्त कृपण था। श्रीराम! एक बार वह उस जंगली मार्गसे कहीं जा रहा था कि उसकी एक कौड़ी किसी घास-फूससे ढके हुए स्थानमें गिर पड़ी। कृपण-शिरोमणि तो वह था ही; अतः उस एक कौड़ीको वह तीन दिनोंतक चारों ओर सारे घास-फूसोंको उलटकर खोजनेका प्रयत्न करता रहा। उसके मनमें बारम्बार ऐसी कल्पना उठ रही थी कि यदि यह कौड़ी मिल जाती तो समयानुसार इस एकसे चार, चारसे आठ, आठसे सौ, सौसे हजार और हजारसे कई हजार कौड़ियाँ हो जातीं। उस समय सहस्रों मनुष्य उस कृपणका उपहास कर रहे थे; परंतु वह उनकी तनिक भी परवा न करके उस वनमें आलस्यरहित होकर रात-दिन खोजता ही रहा। तदनन्तर तीन दिनोंतक अथक परिश्रम करनेके पश्चात् उसे उस जंगलमें एक महान् चिन्तामणि प्राप्त हुई, जो पूर्णिमाके चन्द्रमण्डल-सी आकार-प्रकार एवं प्रकाशवाली थी। उसे पाकर किराटका हृदय प्रसन्न हो गया और वह आनन्दपूर्वक घर लौट आया। वह चिन्तामणि जगत्के सम्पूर्ण ऐश्वर्यके समान थी। उसकी प्राप्ति हो जानेसे वह सुखशान्तिपूर्वक रहने लगा। निष्पाप राम! ब्रह्म सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे अतीत है और शास्त्रोपदेशसे इन्द्रियसम्बन्धी वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, इसलिये गुरूपदेशसे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती अर्थात् आत्मज्ञानमें उपदेश कारण नहीं है। फिर भी गुरूपदेशके बिना आत्मतत्त्वकी प्राप्ति हो भी नहीं सकती; वह कृपण कौड़ीकी खोज न करता तो चिन्तामणिकी उपलब्धि उसे कैसे होती! इसलिये जैसे चिन्तामणिकी प्राप्तिमें कौड़ीकी खोज कारण है, वैसे ही इस महान्

अर्थरूप आत्मतत्त्वकी प्राप्तिमें गुरूपदेश पूर्णतया कारण न होनेपर भी कारणताको प्राप्त है। क्योंकि श्रीराम ! पुरुष कार्य तो कुछ और ही करता है और उसे उस कार्यका फल अन्य ही मिलता है। यह बात तीनों लोकोंमें देखी-सुनी जाती है; इसलिये आत्मज्ञानके अनन्तर इस काल्पनिक जगत्‌को अनासक्ति और निष्कामभावसे वहन करना ही श्रेयस्कर है।

राघव ! तदनन्तर राजा शिखिध्वज तत्त्वज्ञानरूप परमपदकी प्राप्तिके बिना वैसे ही अत्यन्त मोहको प्राप्त हो गये, जैसे संतानहीन पुरुष पुत्र-अभावरूपी तमसे अंधा-सा हो जाता है। उनका मन दुःखाग्निसे संतप्त हो उठा। अतः प्रियवर्गद्वारा लायी गयी भोग-सामग्रियाँ उन्हें आगकी लपट-सी प्रतीत होने लगीं। वैराग्यके कारण उनका मन उनमें तनिक भी सुखका अनुभव नहीं करता था। उन्हें अब एकान्त प्रदेशोंमें, निर्झर-तटोंपर और गुफाओंमें ही निवास करना वैसे ही अधिक रुचने लगा, जैसे व्याधके बाणप्रहारसे मुक्त हुआ जन्तु एकान्तमें छिपना ही पसंद करता है। रघुनन्दन ! राजा शिखिध्वज सान्त्वनापूर्वक अनुनय-विनय करनेवाले एवं समझाने-बुझानेवाले भृत्योंके प्रार्थना करनेपर दिनका सारा काम-काज करते थे। परंतु उनका वैराग्य प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। उनकी बुद्धि अत्यन्त शान्त थी। वे परिव्राजककी भाँति रहते थे। इसलिये विशाल विषयभोगों तथा राज्यश्रीका उपभोग करनेमें उनका मन खिन्न हो जाता था। दूसरोंको मान देनेवाले श्रीराम ! वे देवकार्यके निमित्त तथा ब्राह्मणों और स्वजनोंके लिये गौ, भूमि और सुवर्ण आदिका खुले हाथों दान करने लगे। वे तप करनेके हेतु कृच्छ्र-

चान्द्रायण आदि व्रतोंका अनुष्ठान तथा तीर्थों, वनों और आश्रमोंमें भ्रमण करने लगे। इतनेपर भी उन्हें तनिक-सी भी शोकशून्य स्थिति वैसे ही नहीं प्राप्त हुई, जैसे धनार्थी पुरुषको खानरहित भूमिके खोदनेसे निधिकी प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार महान् बुद्धिमान् होते हुए भी राजा शिखिध्वज चिन्तारूपी अग्निसे संतप्त होकर सूखते जा रहे थे। तब वे संसाररूपी व्याधिकी ओषधिके विषयमें विचार करने लगे। यों चिन्तापरवश होकर वे दीन हो गये। उन्हें अपना राज्य विष-सा प्रतीत होने लगा। इस प्रकार उनकी बुद्धि विषयोंसे खिन्न हो गयी, अतः बहुमूल्य भोग-पदार्थ सामने रखे जानेपर भी वे वैराग्ययुक्त राजा उनकी ओर ताकते भी नहीं थे। इसी स्थितिमें एक दिन चूडाला महलमें बैठी हुई थी, तब राजा उससे मधुर वाणीमें बोले।

शिखिध्वजने कहा—सूक्ष्माङ्गी प्रिये! मैंने बहुत दिनोंतक राज्यका उपभोग किया और विभवपूर्ण पदोंको भी भोग लिया। अब मुझे वैराग्य हो गया है, अतः मैं वन जाना चाहता हूँ; क्योंकि वनवासी मुनिपर सांसारिक सुख, दुःख, आपत्ति, सम्पत्ति—ये कोई भी अपना अधिकार नहीं जमा सकते। न तो उन्हें देशके विनाशसे मोहपूर्वक दुःख होता है और न संग्राममें प्रजाजनोंका क्षय ही करना-कराना पड़ता है; अतः मैं वनवासी मुनियोंके सुखको राज्य-सुखकी अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट मानता हूँ। वैराग्ययुक्त मन जैसा एकान्तमें सुखका अनुभव करता है, वैसा सुख उसे न तो चन्द्रवदनी रमणियोंके मुखमण्डलोंमें मिलता है और न ब्रह्मा एवं इन्द्रके भवनोंमें ही प्राप्त होता है। इसलिये सुन्दरि! मैंने जो यह वनगमनका उत्तम विचार किया है, इसमें बाधा डालना तुम्हारे

लिये उचित नहीं है; क्योंकि कुलीन स्त्रियाँ स्वप्नमें भी पतिकी इच्छाको भङ्ग नहीं करतीं।

चूडाला बोली—नाथ! जैसे वसन्त ऋतुमें पुष्पकी शोभा होती है और शरद् ऋतुमें पुष्प भला मालूम देता है, उसी तरह जिस कार्यके करनेका अवसर प्राप्त हो, उसीका सम्पादन करनेसे उसकी शोभा होती है, अप्राप्तकालके कार्यमें नहीं। इसलिये जिनके शरीर बुढ़ापेसे जर्जर हो गये हैं, उन्हींके लिये वनका आश्रय लेना उचित है, आप-जैसे युवकोंके लिये नहीं। इसी कारण आपका यह विचार मुझे पसंद नहीं है। प्रियतम! जब वृद्धावस्था आनेपर हम दोनोंके सिरके बाल श्वेत पुष्पकी भाँति बिलकुल सफेद हो जायँगे, उस समय हम दोनों एक साथ ही घरसे निकलकर वनको चले चलेंगे। साथ ही, राजन्! बिना समयके ही प्रजापालनरूप कर्मका परित्याग कर देनेवाले राजाके राज्यका विनाश हो जाता है, जिससे उसे महान् पापका भागी होना पड़ता है। बिना अवसरके ही कार्य करनेवाले राजाको प्रजाएँ रोकती ही हैं। इसी प्रकार न करनेयोग्य कार्यसे नौकर स्वामीको और स्वामी नौकरको परस्पर मना करते ही हैं।

शिखिध्वजने कहा—कमलनयनी प्रिये! तुम मेरे अभीष्ट कार्यमें विघ्न मत डालो। अब तुम मुझे यहाँसे दूर एकान्त वनमें गया हुआ ही समझो। अनिन्दिताङ्गि! कठोर-से-कठोर अङ्गवाली स्त्रियाँ भी वनवासके लिये समर्थ नहीं हो सकतीं, फिर तुम्हारे अङ्ग तो बहुत कोमल हैं और तुम अभी नवयुवती हो, अतः तुम्हें तो वनमें नहीं जाना चाहिये। वनवास तो पुरुषोंके लिये भी अत्यन्त कठिन होता है; अतः तुम्हें तो प्रजाका पालन करते हुए इस उत्तम

राज्यमें ही रहना चाहिये; क्योंकि पतिके चले जानेपर कुटुम्बका भार वहन करना स्त्रीका धर्म है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम! अपनी उस चन्द्रवदनी प्राणप्रियासे ऐसा कहकर जितेन्द्रिय राजा शिखिध्वज स्नान करनेके लिये उठकर चल दिये और स्नान करके उन्होंने अपने सम्पूर्ण दैनिक कार्योंका सम्पादन किया। जब सायंकाल हुआ, तब पुनः संध्याकालीन समस्त कृत्योंको पूरा करके वे अपनी प्रिय पत्नी चूडालाके साथ शय्यापर सो गये। तदनन्तर आधी रातके समय जब सारे देशमें सन्नाटा छा गया, सारी जनता गाढ़ निद्रामें लीन हो गयी और कोमल बिछावनसे युक्त पलंगपर सोयी हुई चूडाला भी गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयी, तब जिस पलंगके आधे बिस्तरपर पत्नी सोयी हुई थी, उस पलंगसे राजा उठ खड़े हुए और 'हे राजलक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है' यों कहकर अकेले ही अपने राजमहलसे चल पड़े।

चलते-चलते वे महासागरमें प्रवेश करनेवाले नदकी तरह एक भयंकर अरण्यमें जा पहुँचे। पुनः प्रातःकाल होनेपर राजा शिखिध्वज वेगपूर्वक वहाँसे आगे चले और बारह दिनोंमें बहुत-से नगरों, देशों, पर्वतों और नदियोंको लाँघ गये। तत्पश्चात् वे मन्दराचलके तटवर्ती एक काननमें जा पहुँचे, जो मनुष्यके लिये अति दुर्गम था। वहाँसे मनुष्योंकी बस्ती और नगर अत्यन्त दूर पड़ते थे। वहाँ उन्होंने एक चौरस एवं शुद्ध स्थानमें, जो जलसे घिरा हुआ, शीतल, हरी-हरी घासोंसे आच्छादित होनेके कारण श्याम, स्निग्ध तथा फलोंसे लदे हुए वृक्षोंसे सम्पन्न था, मञ्जरीयुक्त लताओंसे बाँधकर अपने लिये एक पर्णशाला बना ली। फिर राजाने अपनी उस

****

कुटियामें बाँसका चिकना डंडा, फलाहारके लिये पात्र, अर्घ्यपात्र, पुष्पपात्र, कमण्डलु, रुद्राक्षकी माला, शीतका निवारण करनेके लिये गुदड़ी, चटाई और मृगचर्म आदि लाकर यथास्थान रख दिये। इनके सिवा और भी जो कोई वस्तु तापस-कर्मोपयोगी प्रतीत हुई, राजाने उसे भी लाकर वहाँ रख लिया। फिर दिनके प्रथम प्रहरमें प्रातःकाल उन्होंने संध्यापूर्वक जप और दूसरे प्रहरमें पुष्प आदिका संचय कर लेनेके बाद स्नान और देवार्चन किया। तत्पश्चात् कुछ जंगली फल, कन्द-मूल और कमलदण्ड आदि खाकर उन जितेन्द्रिय नरेशने जपपरायण हो अकेले ही वह रात बितायी। इस प्रकार मन्दराचलकी तलहटीमें अपने द्वारा बनायी गयी पर्णशालाके भीतर बैठकर जप करते हुए मालव-नरेश शिखिध्वज खेदरहित होकर दिन बिताने लगे। वे अपने पूर्वानुभूत नित्य नूतन राजसी भोगविलासोंका कुछ भी स्मरण नहीं करते थे। भला, जिसके हृदयमें विवेकपूर्वक वैराग्यका उदय हो जायगा, उसके मनका अपहरण राज्यलक्ष्मियाँ कैसे कर सकती हैं ?

(सर्ग ८३-८४)

सोकर उठी हुई चूडालाके द्वारा राजाकी खोज, वनमें राजाके दर्शन और राजाके भविष्यका विचार करके चूडालाका लौटना, नगरमें आकर राज्य-शासन करना, तदनन्तर कुछ समय बाद राजाको ज्ञानोपदेश देनेके लिये ब्राह्मणकुमारके वेषमें उनके पास जाना, राजाद्वारा उसका सत्कार और परस्पर वार्तालापके प्रसंगमें कुम्भद्वारा कुम्भकी उत्पत्ति, वृद्धि और ब्रह्माजीके साथ उसके समागमका वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुकुलभूषण राम ! इस प्रकार राजा शिखिध्वज वनमें, एक तापसको जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है, उन पदार्थोंका संग्रह करके कुटियामें रहने लगे। इधर घरपर चूडालाने क्या किया—अब उसे सुनो। आधी रातके समय जब राजा शिखिध्वज महलसे निकलकर दूर चले गये, तब अकस्मात् चूडालाकी नींद टूटी। वह तत्काल उठकर शय्यापर बैठ गयी और चिन्ताग्रस्त होकर यों विचार करने लगी—

'दुःखकी बात है, जो मेरे पतिदेव राज्यका परित्याग करके घरसे वनको चले गये; अतः अब मेरा यहाँ रहना किस कामका ? मैं भी उनके समीप ही जाऊँगी; क्योंकि ब्रह्माने स्त्रियोंके लिये पतिको ही एकमात्र गति निर्धारित किया है।' यों सोच-विचारकर चूडाला पतिका अनुगमन करनेके लिये उठ खड़ी हुई और झरोखेके रास्ते निकलकर आकाशमें जा पहुँची। वहाँ आकाशमण्डलमें स्थित होकर उसने अपने पतिको निर्जन वनमें भटकते देखा। फिर वह उनके भविष्यके विषयमें पूर्णरूपसे विचार करने लगी। राघव ! उसने अपने योगबलसे राजाको जैसे, जिस निमित्तसे, जिस देश और कालमें जितने कार्यका जिस रीतिसे सम्पादन तथा जिस प्रकार निर्वाणकी प्राप्ति आदि करनी होगी, उन सभी अवश्यम्भावी

****

विषयोंका योगके द्वारा अनुभव किया और फिर उन्हींके अनुकूल आचरण करनेके लिये वह ऐसा सोचकर आकाशसे लौट पड़ी कि दैवका यही निश्चित विधान मालूम पड़ता है कि कुछ कालके बाद ही मैं इनके समीप जाऊँ, अतः अभी मेरा वनमें जाना ठीक नहीं है। इस प्रकार निश्चय करके चूडालाने वहाँसे लौटकर पुनः अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया।

दूसरे दिन उसने ऐसी घोषणा करा दी कि 'किसी विशेष कारणवश महाराज इस समय बाहर गये हुए हैं।' इस प्रकार समस्त पुरवासी जनोंको आश्वासन देकर सुन्दरी चूडाला वहाँ रहने लगी। जैसे धानकी रखवाली करनेवाली स्त्री समयानुसार पके हुए धानके खेतकी रक्षा करती है, वैसे ही वह समतापूर्वक अपने स्वामीकी शासनप्रणालीके अनुसार राज्यकी देख-भाल करने लगी। इस प्रकार वनमें राजा शिखिध्वजके और अपने महलमें चूडालाके क्रमशः दिन, पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष बीतने लगे। यों सुन्दरी चूडालाको राजमहलमें और शिखिध्वजको जंगली लता-कुञ्जोंमें निवास करते अठारह वर्ष बीत गये।

तदनन्तर बहुत वर्षोंतक उस महाशैलकी तलहटीमें निवास करते हुए राजा शिखिध्वज वृद्धावस्थाको प्राप्त हो गये। इधर चूडाला अपने पतिकी रागादि वासनाओंके परिपाकको लक्ष्य करके उतने कालतक प्रतीक्षा करती रही। जब वनमें रहते हुए जरावस्थासे युक्त राजा शिखिध्वजके बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये, तब पतिके प्रति अपने कर्तव्यकी भावनासे प्रेरित होकर चूडालाके मनमें ऐसा विचार उदय हुआ कि अब मेरे लिये पतिके समीप जानेका समय आ गया है। यों सोचकर वह मन्दराचलकी उपत्यकामें जानेके लिये तैयार हो गयी और रात्रिके समय अन्तःपुरसे निकलकर आकाशमार्गसे उड़ चली। वह वायुमण्डलमें होकर यात्रा कर रही

थी। जब वह आकाशके मध्यमें पहुँची, तब उसने बादलोंमें चमकती हुई बिजलियोंका बारम्बार अवलोकन किया। उस समय वह मन-ही-मन कहने लगी—'अहो! प्राणियोंका स्वभाव जीवनपर्यन्त शान्त नहीं होता, इसी कारण आज मेरा भी मन उत्कण्ठित हो ही गया। किंतु सखे चित्त! यह तुम्हारा कोई दोष नहीं है; क्योंकि तुम्हारी उत्कण्ठा तो अपने स्वामीके प्रति है न। फिर भी तुम उत्कण्ठासे परिपूर्ण होकर स्थित रहो, तुम्हारे भलीभाँति उत्कण्ठित होनेसे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है; क्योंकि मेरे स्वामी तो अब तपस्वी हैं। अतः वे क्षीणकाय एवं वासनाशून्य हो गये होंगे। मैं तो ऐसा समझती हूँ कि उनका मन अब राज्य आदि भोगोंकी ओरसे उपरत हो गया होगा। जैसे वर्षाकालकी क्षुद्र नदी महानदमें मिलकर उसीमें विलीन हो जाती है, वैसे ही उनकी वासनालता महान् आत्मामें एकमेक हो गयी होगी। वे एकात्मा होकर एकान्तमें ही रत रहते होंगे तथा उन वीतरागकी वासनाएँ शान्त हो गयी होंगी। मेरे विचारमें तो ऐसा आता है कि अब मेरे स्वामीकी स्थिति सूखे वृक्षकी-सी हो गयी होगी। तथापि चित्त! तुम्हें उत्कण्ठित होनेकी क्या आवश्यकता है। मैं स्वयं अपने योगबलसे पतिदेवकी बुद्धिको उद्‌बुद्ध करके उन्हें उत्कण्ठित कर दूँगी और फिर तुम्हारे साथ मिला दूँगी। मैं अपने मुनिस्वरूप स्वामीके इच्छारहित मनको समतायुक्त बनाकर राज्यमें ही नियुक्त करूँगी और फिर हम दोनों चिरकालतक सुखपूर्वक निवास करेंगे। अहो! निश्चय ही चिरकालके पश्चात् मैं इस शुभ मनोरथको प्राप्त करूँगी।

यों सोचकर चूडाला आकाशमार्गसे उड़ती हुई पर्वतों, देशों, मेघों तथा दिग्‌दिगन्तोंको लाँघकर मन्दराचलकी उस कन्दराके निकट जा पहुँची। वहाँ वह अदृश्यरूपसे आकाशमें ही स्थित रही। फिर वृक्षों और लताओंके स्पन्दनसे गमनागमनको सूचित

करनेवाली वायुकी तरह उसने वनके भीतर प्रवेश किया। वहाँ उसने वनके किसी एक प्रदेशमें पर्णशाला बनाकर उसमें बैठे हुए अपने पतिको देखा। जो पहले हार, बाजूबंद, कड़े और कुण्डल आदिसे विभूषित होकर सुमेरुके समान कान्तिमान् दीखते थे, उन्हींको आज चूडालाने कृशकाय, कृष्णवर्ण तथा जीर्ण-शीर्ण पत्तेकी तरह शुष्क शरीरवाला देखा। उनके सिरपर जटाएँ बँध गयी थीं तथा शरीरपर वल्कल-वस्त्र शोभा दे रहा था। शान्त तो वे थे ही; अतः अकेले ही भूमिपर बैठकर पुष्पोंकी माला गूँथ रहे थे। उन्हें देखकर सर्वाङ्गसुन्दरी चूडालाका मन कुछ खिन्न हो गया; फिर वह मन-ही-मन कहने लगी—'अहो! मेरे पतिकी यह कैसी अज्ञानभरी मूर्खता है। इसी मूर्खताके प्रसादसे ही ऐसी दशाएँ आया करती हैं। ये शोभाशाली नरेश मेरे परम प्रिय पति हैं। इनका हृदय गाढ़ मोहसे आहत हो गया है, इसी कारण ये इस दशाको प्राप्त हो गये हैं। अतः अब मैं इन्हें सर्वोत्तम ज्ञान प्रदान करनेके लिये अपने इस रूपका परित्याग करके किसी अन्य रूपसे इनके समीप जाऊँगी; क्योंकि यदि मैं इसी रूपसे जाती हूँ तो 'यह बाला मेरी प्रेयसी प्रिया है' यों समझकर ये मेरे कथनपर भलीभाँति ध्यान नहीं देंगे, इसलिये तपस्वीका वेष धारण करके इनके सामने उपस्थित होकर मैं क्षणभरमें इन्हें प्रबुद्ध कर दूँगी। इस समय मेरे स्वामीकी बुद्धि रागादि वासनाओंके परिपाकसे परिपक्व हो गयी है, अतः अब इनके निर्मल चित्तमें आत्मतत्त्व भलीभाँति प्रकट हो सकता है।' यों मन-ही-मन विचार करके चूडाला थोड़ी देरतक ध्यानमग्न हो गयी। फिर, तत्काल ही जलतरङ्गकी तरह उसका रूप बदल गया और वह एक ब्राह्मणकुमारके रूपमें परिवर्तित हो गयी। फिर तो वह उसी रूपसे उस जंगलमें उतर पड़ी और अपने

पतिदेवके सामने जाकर खड़ी हो गयी। उस समय उसका मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित हो रहा था।

उस द्विजपुत्रका शरीर तपाये हुए सुवर्णके समान गौरवर्णका था, कंधेपर शुक्ल यज्ञोपवीत लटक रहा था और वह दो निर्मल स्वच्छ वस्त्रोंसे आच्छादित था। इस प्रकार वह दूसरे वनसे आया हुआ मूर्तिमान् तप-सा ही प्रतीत होता था। उस शोभाशाली द्विजकुमारको अपने सामने देखकर राजा शिखिध्वजने समझा कि यह कोई देवपुत्र आया हुआ है, अतः वे अपनी खड़ाऊँ छोड़कर तुरंत ही उठ खड़े हुए और बोले—'देवपुत्र ! आपको नमस्कार है। आइये, इस आसनपर विराजिये।' यों कहकर उन्होंने अपने हाथसे उसके सामने एक पत्तेका आसन रख दिया। तब ब्राह्मणकुमारने भी कहा—'राजर्षे ! आपको प्रणाम है।'

शिखिध्वजने कहा—महाभाग देवपुत्र ! कहाँसे आपका शुभागमन हुआ है ? आज मुझे जो आपका दर्शन प्राप्त हो गया, इससे मैं आजका दिन सफल समझता हूँ। मानद ! आपका कल्याण हो। आपके लिये यह अर्घ्य है, यह पाद्य है, ये पुष्प हैं और यह गुँथी हुई माला है—इन्हें आप ग्रहण करनेकी कृपा करें।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—निष्पाप राम ! ऐसा कहकर राजा शिखिध्वजने ब्राह्मणकुमारके वेषमें आयी हुई अपनी उस प्रियतमा पत्नीको शास्त्रविधिके अनुसार अर्घ्य, पाद्य, पुष्प और माला आदि समर्पित किये।

तत्पश्चात् (ब्राह्मणकुमारके वेषमें) चूडाला बोली—सज्जन-शिरोमणे ! आपने शान्त मनसे निर्वाण-प्राप्तिके लिये फलकी

कामनासे रहित उत्कृष्ट तपका संचय तो कर लिया है न ? क्योंकि सौम्य ! आपने जो धन-धान्यसम्पन्न राज्यका परित्याग करके महावनका आश्रय लिया है, आपका यह शान्त व्रत तलवारकी धारके समान है।

शिखिध्वजने कहा—भगवन् ! आपके लोकोत्तर चिह्न-स्वरूप सौन्दर्यसे ही ज्ञात हो रहा है कि आप कोई देवता हैं, इसीसे सब कुछ जानते हैं। इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? सौन्दर्यशाली देव ! अभी मेरी प्रियतमा भार्या वर्तमान है। आजकल वह मेरे राज्यका संचालन कर रही है। उसीके सारे अङ्गोंकी तरह आपके अङ्ग लक्षित हो रहे हैं। अभ्यागतका आदर-सत्कार करनेसे अपना जीवन सफल हो जाता है, इसलिये सत्पुरुष अभ्यागतको देवतासे भी बढ़कर पूज्य मानते हैं। (इसी कारण मैंने आपका आतिथ्य किया है।) निर्मल चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखवाले देवपुत्र ! अब मेरे मनमें एक संशय है, उसका आप निवारण कीजिये। वह संशय यह है कि आप कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? और मुझपर कृपा करके कहाँसे और किस लिये यहाँ पधारे हैं ?

ब्राह्मणकुमार बोला—राजन् ! आपके प्रश्नानुसार मैं सारी बातें कहता हूँ, सुनिये। इस जगन्मण्डलमें मुनिवर नारद रहते हैं। उनका हृदय परम विशुद्ध है। उनके शरीरका वर्ण पुण्यलक्ष्मीके कमनीय मुखमें सुशोभित कर्पूरके तिलकके सदृश गौर है। किसी समय वे देवर्षि मेरुगिरिकी कन्दरामें ध्यानावस्थित थे। उस गुहाके समीप ही उत्ताल तरङ्गोंवाली गङ्गाजी बह रही थीं; जिनका जल मेरुगिरिके सौन्दर्यसे उद्भासित हो रहा था, जिससे वे हारकी तरह

सुशोभित हो रही थीं। उसी गङ्गा नदीके तटपर एक बार ध्यानसे विरत होनेपर नारदमुनि बैठे थे, तबतक उन्हें कङ्कणोंकी झनकारसे युक्त जलक्रीडाकी कल-कल ध्वनि सुनायी पड़ी। सुनते ही उनके मनमें कुछ कुतूहल उत्पन्न हो गया और उन्होंने यह जानना चाहा कि यह क्या है। फिर तो कौतुकवश चारों ओर दृष्टि दौड़ानेपर उन्हें नदीमें रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओंका दल दिखायी पड़ा, जो जलक्रीडासे निवृत्त होकर बाहर निकल रहा था। भींग जानेके कारण उनके समस्त अङ्ग ऊपरसे नीचेतक दीख रहे थे और ये परस्पर एक-दूसरेमें प्रतिबिम्बित हो रहे थे, जिससे वे एक-दूसरीके लिये दर्पण-सी बन गयी थीं। एक ही स्थानपर एकत्रित किये गये चन्द्रमण्डलके कलापुञ्जकी भाँति उस कमनीय नारीदलको देखकर जब सहसा नारदमुनिका चित्त क्षुब्ध हो उठा, तब उनका वीर्य स्खलित हो गया।

तदनन्तर नारदमुनिने अपने मनरूपी उन्मत्त गजराजको विशुद्ध बुद्धिरूपी रस्सेसे विवेकरूपी सुदृढ़ आलानमें बाँध दिया और उस स्खलित हुए वीर्यको, जो प्रलयकालीन अग्निके तापसे पिघले हुए चन्द्रद्रवके सदृश तथा पारद और सुवर्ण आदि शम्भुके दिव्य वीर्यके समान था, अपने पास ही पड़े हुए एक अद्भुत कान्तिमान् स्फटिक कुम्भमें स्थापित कर दिया। फिर उन्होंने उस कुम्भको अपने संकल्पजनित दूधसे परिपूर्ण कर दिया, कुछ ही दिनोंमें वह घटस्थित शुभ गर्भ वृद्धिको प्राप्त हो गया। फिर तो जैसे मास चन्द्रमाको तथा वसन्त ऋतु पुष्पोंको उत्पन्न करती है, उसी प्रकार समय आनेपर उस घटने एक कमलदल-सदृश नेत्रोंवाले बालकको जन्म दिया। कुम्भसे वह बालक सम्पूर्ण अङ्गोंसे परिपूर्ण

होकर निकला था। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो क्षीरसागरसे दूसरा क्षयरहित पूर्ण चन्द्रमा निकला हो। शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान वह कुछ ही दिनोंमें बढ़कर बड़ा हो गया। उसका शरीर अनुपम सौन्दर्यसे युक्त था। जब वह जातकर्म आदि सभी संस्कारोंसे सम्पन्न हो गया, तब मुनिवर नारदने अपना सारा विद्याधन उस बालकमें उसी प्रकार स्थापित कर दिया, जैसे एक पात्रमें रखा हुआ धन दूसरे पात्रमें उँड़ेल दिया जाता है। थोड़े ही दिनोंमें वह सम्पूर्ण वाङ्मयका विशिष्ट ज्ञाता हो गया। इस प्रकार मुनिवर नारदने उसे अपना प्रतिबिम्ब-सा बना दिया।

तदनन्तर नारदजी अपने पुत्रको साथ लेकर ब्रह्मलोकको गये और वहाँ उससे अपने पिता ब्रह्माजीके चरणोंमें अभिवादन करवाया। प्रणाम कर चुकनेके बाद ब्रह्माजीने अपने पौत्रसे परीक्षार्थ वेदादि शास्त्रोंके विषयमें प्रश्न किये और उनका समुचित उत्तर पानेपर उन्होंने उसे पकड़कर अपनी गोदमें बैठा लिया। फिर तो, उन कमलयोनिने उस कुम्भ नामवाले पौत्रको केवल आशीर्वाद देकर सर्वज्ञ तथा ज्ञानका पारगामी विद्वान् बना दिया। साधुशिरोमणे ! वह कुम्भ मैं ही हूँ। कुम्भसे उत्पन्न होनेके कारण मेरा ही नाम कुम्भ पड़ा है। मैं नारदमुनिका पुत्र और पद्मजन्मा ब्रह्माका पौत्र हूँ। ब्रह्मलोक ही मेरा घर है। वहीं मैं अपने पिताजीके साथ सुखपूर्वक निवास करता हूँ। चारों वेद मेरे सुहृद् हैं। मैं किसी कार्यवश नहीं, बल्कि कौतुकवश स्वेच्छानुसार सभी लोकोंमें विचरता हूँ। जब मैं भूलोकमें विचरण करता हूँ, उस समय मेरे पैर भूतलपर नहीं पड़ते, धूलिकण अङ्गोंका स्पर्श नहीं करते और मेरा शरीर कभी मलिन नहीं होता। आज मैं आकाशमार्गसे जा रहा था कि सामने आप दिखायी पड़ गये, इसलिये यहाँ चला

आया हूँ। वनवासके गुणों तथा तज्जन्य फलोंके ज्ञाता साधो ! इस प्रकार अपने अनुभवके अनुसार मैंने सारा-का-सारा वृत्तान्त आपको बतला दिया।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—मुने ! महर्षि वसिष्ठके इस प्रकार कहते-कहते वह दिन समाप्त हो गया। जब भगवान् सूर्य अस्ताचलकी ओर जाने लगे, तब वह सभा विसर्जित हुई और सभी सभासद् मुनिवर वसिष्ठको नमस्कार करके सायंकालीन विधिका सम्पादन करनेके लिये स्नान करने चले गये और रात्रि व्यतीत होनेपर पुनः सूर्योदय होते-होते सभामें जुट गये।

(सर्ग ८५-८६)

राजा शिखिध्वजद्वारा कुम्भकी प्रशंसा, कुम्भका ब्रह्माजीके द्वारा किये हुए ज्ञान और कर्मके विवेचनको सुनाना, राजाद्वारा कुम्भका शिष्यत्व-स्वीकार

राजा शिखिध्वजने कहा—देवकुमार ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि जैसे आँधी मेघोंको उड़ाकर पर्वतपर पहुँचा देती है, उसी प्रकार मेरी संचित पुण्यराशिने अप्रकटरूपसे फलदानोन्मुख होकर आपको यहाँ भेजा है। साधो ! आपके वचनोंसे तो मानो अमृत टपक रहा है, अतः आपके साथ आज जो मेरा समागम हो गया, इससे अब मैं धर्मात्माओंकी गणनामें सर्वप्रथम गिना जाऊँगा। प्रभो ! साधु-समागमसे चित्तको जैसी शान्ति उपलब्ध होती है, वैसी शान्ति राज्य-लाभ आदि कोई भी पदार्थ नहीं दे सकते; क्योंकि सत्सङ्ग होनेपर सामान्यरूपसे अपरिमित ब्रह्मानन्दरूप सुख प्रकट होने लगता है, जिससे कल्पनाजनित सुख प्रदान करनेवाले रागादि दोषोंका विचार ही नष्ट हो जाता है।

(देवपुत्रके वेषमें) चूडाला बोली—साधुश्रेष्ठ ! छोड़िये इस कथाको। मैंने तो आपके प्रश्नानुसार अपना सारा वृत्तान्त आपको बता दिया। अब आप मुझे अपना परिचय दीजिये—आप कौन हैं ? इस पर्वतपर क्या कर रहे हैं ? आपको अरण्यवास करते कितना समय बीत गया और इससे आप अब कौन-सा कार्य सिद्ध करना चाहते हैं ?—यह सब बताइये।

शिखिध्वजने कहा—भगवन् ! आप तो स्वयं ही देवकुमार हैं, अतः लोकवृत्तान्त और परमार्थवृत्तान्तके पूर्ण ज्ञाता हैं। मेरे विषयमें भी आप सब कुछ यथार्थरूपसे जानते ही हैं, फिर, इसके अतिरिक्त मैं और क्या कहूँ। आर्य ! यद्यपि आप मुझे जानते हैं, फिर भी मैं आपसे अपना परिचय संक्षेपमें दे रहा हूँ, सुनिये। मैं शिखिध्वज नामका राजा हूँ और अपने राज्यका परित्याग करके यहाँ चला आया हूँ। मैं संसार-भयसे भीत हो गया हूँ, अतः इस वनमें निवास करता हूँ। तत्त्वज्ञ ! मुझे सबसे बड़ा भय तो इस बातका है कि कहीं संसारमें मेरा पुनर्जन्म न हो जाय। यद्यपि मैं दिग्दिगन्तोंमें भ्रमण कर रहा हूँ और कठोर तप भी कर रहा हूँ, तथापि मुझे अभी वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं हुई है, शास्त्रोक्त प्रक्रियाका समुचितरूपसे सम्पादन करनेपर भी मुझे दुःख-पर-दुःख ही मिलते जा रहे हैं और मेरे लिये अमृत भी विषवत् हो गया है। (भगवन् ! इसका क्या कारण है ?)

(देवपुत्रके रूपमें) चूडाला बोली—साधो ! पहले किसी समय मैंने अपने पितामह ब्रह्माजीसे ऐसा प्रश्न किया था—'प्रभो ! ज्ञान और कर्म—इन दोनोंमें जो एकमात्र श्रेयस्कर हो, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।'

तब ब्रह्माजीने कहा—बेटा ! ज्ञान और कर्ममें ज्ञान ही परम श्रेयस्कर है; क्योंकि उससे भलीभाँति कैवल्य-स्वरूप परमात्माका साक्षात् अनुभव हो जाता है; परंतु पुत्र ! जिन्हें ज्ञानदृष्टिकी प्राप्ति नहीं हुई है, उनके लिये कर्म ही सबसे बढ़कर है; क्योंकि जिसके पास रेशमी शाल नहीं है, वह क्या साधारण कम्बलको भी छोड़ देता है ? अज्ञानीके सभी कर्म सफल हैं अर्थात् जन्म-मरणरूप फल प्रदान करते हैं, क्योंकि कर्मोंकी सफलतामें प्रयोजक वासनाएँ उसमें बनी हुई हैं; परंतु जो ज्ञानसम्पन्न है, उसके सभी कर्म निष्फल हैं अर्थात् वे जन्म-मरणरूप फल नहीं देते; क्योंकि उसकी सारी वासनाएँ नष्ट हो चुकी हैं। जैसे ऋतु-परिवर्तनके समय पहली ऋतुके गुणोंका आगामी ऋतुमें विनाश हो जाता है, उसी तरह वासनाका क्षय हो जानेपर कर्मफल भी नष्ट हो जाता है। वत्स ! वास्तवमें वासना कार्यवस्तु है ही नहीं, किंतु जैसे मरुस्थलमें असत्यरूपसे जल प्रतीत होता है, उसी प्रकार वह मूर्खताके कारण अज्ञानीमें अहंकार आदिका रूप धारण करके असत्यरूपसे प्रकट होती है। परंतु '**सर्वं ब्रह्म**'—सब कुछ ब्रह्म ही है' ऐसी भावना करनेसे जिसके अज्ञानका नाश हो गया है, उसके मनमें वासना उत्पन्न ही नहीं होती। ठीक उसी तरह, जैसे बुद्धिमान् पुरुषको मरुस्थलमें जलकी भ्रान्ति नहीं होती। अपने भीतरसे वासनामात्रका पूर्णतया परित्याग कर देनेसे जीव जरा-मरणरहित एवं पुनर्जन्म शून्य परमपदको प्राप्त हो जाता है।

(देवपुत्रके रूपमें) चूडाला कहती है—राजर्षे ! इस प्रकार जब वे ब्रह्मा आदि महापुरुष भी ज्ञानको ही परमोत्कृष्ट श्रेय बतलाते हैं, तब आप उस ज्ञानसे रहित क्यों हैं ? भूपाल ! 'इधर कमण्डलु

है, इधर दण्डकाष्ठ है, इधर कुशकी चटाई है'—ऐसे अनर्थोंसे परिपूर्ण इस संसारमें क्यों सुख मान रहे हैं ? राजन् ! मैं कौन हूँ ? यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ है और किस उपायसे इसकी शान्ति होगी ?—इन प्रश्नोंपर किसलिये आप विचार नहीं करते ? क्यों अज्ञानी बने बैठे हैं ? नरेश ! जो सगुण-निर्गुणरूप परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले हैं, ऐसे महात्माओंके पास जाकर 'बन्धन कैसे हुआ और मोक्षका उपाय क्या है ?' यों प्रश्न करते हुए आप उनके चरणोंकी सेवा क्यों नहीं करते ? यहाँ पर्वतकी कन्दरामें बैठे इस कठोर तपस्यामें आप अपना जीवन क्यों बिता रहे हैं ? जिस युक्तिसे संसार-बन्धनसे मुक्ति मिलती है, वह तो समतापूर्ण दृष्टिवाले महात्माओंके पास जाकर उनसे पूछनेसे, उनकी सेवासे तथा उनके समागमसे ही उपलब्ध होती है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! उस देवरूपिणी कान्ता चूडालाने जब इस प्रकार ज्ञानोपदेश किया, तब राजा शिखिध्वजकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वे इस प्रकार बोले।

शिखिध्वजने कहा—देवकुमार ! बहुत कालके पश्चात् आज आपने मुझे प्रबुद्ध कर दिया। अहो ! इतने दिनोंतक साधु-समागमका परित्याग करके मैं जो वनमें निवास करता रहा, यह मेरी मूर्खताका परिचायक है। आप जो स्वयं ही यहाँ पधारकर मुझे ज्ञानोपदेश कर रहे हैं, इससे तो मैं समझता हूँ कि निश्चय ही मेरे सम्पूर्ण पापोंका विनाश हो गया। सुमुख ! अब आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही मेरे पिता हैं और आप ही मेरे मित्र हैं। मैं आपका शिष्य हूँ और आपके चरणोंमें नतमस्तक हूँ, मुझपर कृपा

कीजिये। भगवन्! जिसे आप सर्वोत्तम समझते हों और जिसे जान लेनेपर फिर शोक नहीं करना पड़ता तथा जिसको प्राप्त करके मैं मुक्त हो जाऊँगा, उस परब्रह्म-तत्त्वका मुझे शीघ्र ही उपदेश दीजिये।

(देवपुत्रके रूपमें) चूडाला बोली—राजर्षे! यदि आप मेरे वचनोंको उपादेय मानते हों अर्थात् उन्हें सुननेकी श्रद्धा रखते हों तब तो मैं अपनी जानकारीके अनुसार उस ब्रह्मका उपदेश करूँगा, अन्यथा कुछ भी नहीं कहूँगा; क्योंकि अश्रद्धालुके सामने कुछ कहना निरर्थक होता है। साथ ही जिसके वचनोंमें श्रोताकी श्रद्धा नहीं होती और जिससे कौतूहलसे प्रश्न किया जाता है, उस वक्ताके वचन निष्फल हो जाते हैं।

शिखिध्वजने कहा—गुरुदेव! मैं आपसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप जो कुछ उपदेश देंगे, मैं उसे वेदके विधि-वाक्यकी भाँति निश्चय ही तुरंत ग्रहण कर लूँगा।

(देवपुत्रके रूपमें) चूडाला बोली—राजर्षे! जैसे छोटा शिशु अपने पिताके वचनको बिना ननु-नच किये प्रमाणबुद्धिसे स्वीकार कर लेता है, वैसे ही आप भी मेरे इन वचनोंको ग्रहण कीजिये। राजन्! सुनिये, मैं एक ऐसे मनोहर कथानकका वर्णन करूँगा, जो आपके चरित्रके सदृश है। वह चिरकालके पश्चात् उन्नतिको प्राप्त होती हुई मन्दमतियोंकी बुद्धिको उद्‌बुद्ध करनेवाला है तथा उत्कृष्ट बुद्धिवालोंको शीघ्र ही भवभयसे उद्धार करनेवाला है।

(सर्ग ८७)

चिरकालकी तपस्यासे प्राप्त हुई चिन्तामणिका त्याग करके मणिबुद्धिसे काँचको ग्रहण करनेकी कथा तथा विन्ध्यगिरिनिवासी हाथीका आख्यान

(देवपुत्रके रूपमें) चूडाला कहती है—राजन्! एक श्रीसम्पन्न पुरुष था, जो कलाओंका ज्ञाता, अस्त्र-विद्यामें निपुण और व्यवहार करनेमें भी चतुर था। वह जिन-जिन कार्योंको करनेका संकल्प करता, उन्हें पूरा करके ही छोड़ता था। इतना होनेपर भी उसे परमपदका ज्ञान नहीं था। तब वह अनन्त प्रयत्नोंसे उपलब्ध होनेवाली चिन्तामणिकी प्राप्तिके लिये तपश्चर्यामें प्रवृत्त हुआ। उस दृढ़निश्चयी पुरुषके कुछ कालतक महान् प्रयत्न करनेपर चिन्तामणि प्रकट हुई। भला, उद्योगी पुरुषोंके लिये ऐसी कौन-सी वस्तु है जो सुलभ नहीं हो सकती; क्योंकि यदि अकिंचन भी कष्टकी परवा न करके अपनी बुद्धिके सहारे कार्यमें प्रवृत्त होकर उद्यम करता है तो उसे भी उस कार्यको निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार उस उत्तम मणिराजके प्राप्त होनेपर वह यह निश्चय नहीं कर सका कि यह चिन्तामणि ही है। तब घोर दुःख और परिश्रमसे उपलब्ध हुई उस चिन्तामणिकी उपेक्षा करके वह अपने विस्मययुक्त मनसे यों विचार करने लगा—'यह चिन्तामणि है या नहीं है; क्योंकि यदि चिन्तामणि होती तो यह मेरे सामने प्रत्यक्ष नहीं होती। मैं इसका स्पर्श करूँ या न करूँ; कहीं ऐसा न हो कि यह मेरे छूनेसे अदृश्य हो जाय। निश्चय ही इतने ही समयमें उस वास्तविक मणिराजकी प्राप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि शास्त्रोंका कथन है कि उसके लिये जीवन-

पर्यन्त प्रयत्न करना पड़ता है। भला, मेरी ऐसी उत्कृष्ट भाग्य-सम्पत्ति कहाँ हो सकती है, जो इतने थोड़े कालमें सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली उस चिन्तामणिको मैं पा लूँ। मेरी तपस्या तो बहुत थोड़ी है। मैं साधुओंमें एक तुच्छ मनुष्य हूँ और दुर्भाग्यका एकमात्र पात्र हूँ। ऐसी स्थितिमें सिद्धियाँ मेरे निकट कैसे आ सकती हैं।'

इस प्रकार वह मूर्ख तर्क-वितर्कके हिंडोलेमें झूलता हुआ बहुत देरतक विचार करता रहा। अन्ततोगत्वा उसने उस मणिके ग्रहण करनेका विचार छोड़ दिया; क्योंकि मूर्खताके कारण उसकी बुद्धि मूढ़ हो गयी थी। ऐसा नियम भी है कि जो वस्तु जिसे जिस समय (प्रारब्धके कारण) प्राप्तव्य नहीं होती, वह उसे उस समय पा नहीं सकता। देखो न, उस दुर्बुद्धिने प्राप्त हुई चिन्तामणिकी भी उपेक्षा कर दी। इस प्रकार जब वह तर्क-वितर्क करता ही रह गया, तब वह मणि उड़कर वहाँसे अदृश्य हो गयी; क्योंकि अवहेलना करनेवालेको सिद्धियाँ उसी प्रकार छोड़ देती हैं, जैसे धनुषसे छोड़ा हुआ बाण प्रत्यञ्चाका परित्याग कर देता है। सिद्धियाँ जब आती हैं, तब वे सभी अभीष्ट पदार्थोंको देती रहती हैं, परंतु अवहेलना करनेपर जब वे वापस जाने लगती हैं, उस समय वे उस पुरुषकी बुद्धिका विनाश कर डालती हैं।

इस प्रकार उस चिन्तामणिके अदृश्य हो जानेपर वह पुनः उस उत्तम रत्नकी प्राप्तिके लिये यत्नपूर्वक चेष्टा करने लगा, क्योंकि अटल निश्चयवाले मनुष्य अपने कार्यसे उद्विग्न नहीं होते। कुछ समयके बाद उसे अत्यन्त कान्तिमान् एक काँचका टुकड़ा दिखायी पड़ा। फिर तो, जैसे मोहग्रस्त अज्ञानी पुरुष मिट्टीको सुवर्ण

समझने लगता है, उसी प्रकार उस मूर्खने 'यही चिन्तामणि है' यों निश्चय करके उसकी उपादेयता स्वीकार कर ली। उस काँचकी मणिको लेकर उसने सोचा कि अब तो इस चिन्तामणिके प्रभावसे मुझे सारी अभीष्ट वस्तुएँ अनायास ही मिल जायँगी, फिर इन धन-सम्पत्तियोंको लेकर क्या करना है—ऐसा विचारकर उसने अपनी पहली सम्पत्तिका त्याग कर दिया। उसे विश्वास हो गया कि 'अब तो घरसे दूर जाकर इच्छानुसार सम्पत्ति-सम्पन्न होकर मैं सुखपूर्वक जीवन-यापन करूँगा'—ऐसी धारणा करके वह मूर्ख निर्जन काननमें चला गया। वहाँ पहुँचनेपर, उसे उस काँच-खण्डसे कुछ मिलना-जुलना तो था ही नहीं, वह भारी विपत्तिमें फँस गया। मूर्खताके कारण जैसे दुःख मनुष्यके सामने आते हैं, वैसे दुःख तो भीषण आपत्तियोंमें फँसनेपर बुढ़ापेसे तथा मृत्युसे भी नहीं प्राप्त होते। अतः एकमात्र मूर्खता ही सम्पूर्ण दुःखोंकी प्राप्तिमें कारण है।

भूपाल ! अब यह दूसरा मनोहर उपाख्यान सुनो। साधो ! यह आपके वृत्तान्तके ही अनुरूप है और बुद्धिको परमोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करनेवाला है। राजन् ! विन्ध्यगिरिके किसी वनमें एक हाथी रहता था, जो बड़े-बड़े यूथपतियोंके यूथका भी अधिपति था। उसके दोनों दाँत बहुत सफेद और लम्बे थे तथा वज्रकी ज्वालाके समान चमकीले एवं तीक्ष्ण थे। एक बार एक महावतने उसे चारों ओरसे लोहेकी शृङ्खलासे जकड़कर वैसे ही बाँध दिया, जैसे मुनिवर अगस्त्यने विन्ध्याचलको और उपेन्द्रने असुरराज बलिको बाँध दिया था। बँधा तो वह था ही, ऊपरसे उसके गण्डस्थलोंपर शस्त्रोंकी मार भी पड़ रही थी, जिससे वह धैर्यशाली गजराज भीषण यन्त्रणा भोग रहा था। उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी। इस

प्रकार लोहेकी जंजीरमें बँधे हुए उस गजराजको जब तीन दिन बीत गये, तब उसे बड़ा खेद हुआ और उस बन्धनको तोड़ डालनेके लिये तैयार होकर उसने चिग्घाड़ना शुरू किया। फिर तो चार ही घड़ीमें घोर प्रयास करके उस हाथीने अपने दोनों दाँतोंसे बन्धनको छिन्न-भिन्न कर दिया। उसका शत्रु महावत दूरसे ही उसकी बन्धन-छेदन-क्रियाको देख रहा था। जब उस हाथीका बन्धन टूट गया, तब वह महावत पहले एक ताड़वृक्षपर चढ़कर वहाँसे अंकुशद्वारा उस हाथीको वशमें करनेके लिये उसके सिरको लक्ष्य करके कूद पड़ा; परंतु उसके पैर हाथीके सिरपर नहीं पहुँच सके, जिससे वह घबराकर भूमिपर गिर पड़ा।

राजर्षे ! तिर्यग्-योनिमें भी प्रकाशमान एवं विशुद्ध गुणोंसे युक्त साधु-स्वभाववाले जीव देखे जाते हैं; इसीलिये अपने शत्रुभूत महावतको सामने गिरा हुआ देखकर उस गजराजके हृदयमें करुणा उत्पन्न हो गयी। वह सोचने लगा—'यदि मैं इस गिरे हुएको पैरोंसे कुचल दूँ तो इससे मेरा कौन-सा पुरुषार्थ सिद्ध होगा।' यों विचारकर हाथीने अपने शत्रुभूत उस महावतके प्राण नहीं लिये। जब वह हाथी वहाँसे जंगलकी ओर चला गया, तब महावत उठ बैठा। उसका शरीर और बुद्धि—दोनों स्वस्थ थे। हाथीके जानेके साथ-ही-साथ उसकी व्यथा भी दूर हो गयी। इतने ऊँचे ताड़वृक्षकी चोटीसे गिरनेपर भी उसका अङ्ग-भङ्ग नहीं हुआ था। वह पैदल चलनेमें बड़ा उत्साही था। इस प्रकार जब उस हाथीके शत्रु महावतका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ और हाथी उसके हाथसे निकल गया, तब उसे महान् दुःख हुआ। वह पुनः यत्नपूर्वक वनमें झाड़ियोंमें छिपे हुए उस हाथीकी खोज करने लगा।

चिरकालके पश्चात् इसे वही गजराज मिला, जो एक जंगलमें वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम कर रहा था। तब उस धूर्त महावतने, जहाँ वह हाथी बैठा था, उसके समीप ही हाथीके फँसाने योग्य एक गोलाकार गड्ढा खोदकर तैयार किया और ऊपरसे उसे कोमल लताओंसे ढक दिया।

कुछ ही दिनोंके बाद जब वह हाथी वनमें विहार कर रहा था कि यकायक उसी गड्ढेमें जा गिरा। तब उस महावतने गड्ढेमें गिरे हुए उस हाथीको पुनः सुदृढ़रूपसे बाँध दिया, जो आज भी भूगर्भमें पड़ा दुःख भोग रहा है। यदि वह हाथी अपने सामने गिरे हुए शत्रुको पहले ही मार डाले होता तो आज उसे शत्रुद्वारा गर्तबन्धनरूप दुःखकी प्राप्ति नहीं हुई होती। जो मनुष्य मूर्खतावश वर्तमान क्रियाओंद्वारा आगामी कालका शोधन नहीं कर लेता, वह विन्ध्यगिरिनिवासी गजराजकी भाँति ही दुःखका भागी होता है। वह हाथी 'मैं शृङ्खलाबन्धनसे मुक्त हो गया हूँ' इतने मात्रसे ही संतुष्ट हो गया; परंतु दूर चले जानेपर भी वह पुनः अज्ञानवश बन्धनमें पड़ गया। भला, मूर्खता कहाँ नहीं बाधा पहुँचाती अर्थात् सर्वत्र बाधा देती ही है। महात्मन्! 'बद्ध हुआ भी मैं बन्धनरहित हूँ' इस प्रकारकी चित्तगत मूर्खताको ही परम बन्धन समझना चाहिये। अतः उससे छुटकारा पानेके लिये परमात्माके संकल्पसे उत्पन्न सम्पूर्ण त्रिलोकीको परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये। जिसे इस प्रकारका ज्ञान नहीं है और जो मूर्खतामें स्थित है, उसके लिये वह स्वयं ही सहसा समस्त बन्धनोंका कारण बन जाता है।

(सर्ग ८८-८९)

★

कुम्भद्वारा चिन्तामणि और काँचके आख्यानके तथा विन्ध्यगिरिनिवासी हाथीके उपाख्यानके रहस्यका वर्णन

राजा शिखिध्वजने कहा—देवपुत्र ! आपने चिन्तामणिकी प्राप्ति तथा विन्ध्यगिरिनिवासी गजराजके बन्धन आदिका जो कथा-प्रसङ्ग मुझे सुनाया है, उसका अब स्पष्टीकरण कीजिये।

(देवपुत्रके रूपमें) चूडाला बोली—राजन् ! मैंने आपको जो विचित्र कथा सुनायी थी, उसका रहस्य भी सुनिये। महीपते ! उसमें जो वह शास्त्रार्थकुशल किंतु तत्त्वज्ञानमें मूर्ख चिन्तामणिका साधक बतलाया गया है, वह तो आप ही हैं। साधो ! अकृत्रिम सर्वस्व-त्यागको चिन्तामणि समझिये, जो सम्पूर्ण दुःखोंका अन्त करनेवाली है। शुद्ध बुद्धिपूर्वक आप उसीका साधन कर रहे हैं। किंतु निष्पाप राजन् ! वास्तविक शुद्ध सर्वत्यागसे ही सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, कृत्रिम त्यागसे नहीं। यद्यपि आपने स्त्री-पुत्र, धन-दौलत और बन्धु-बान्धवोंसहित सम्पूर्ण राज्यका परित्याग कर दिया है और अपने देशसे बहुत दूर आकर इस आश्रममें अपना निवासस्थान बनाया है तथापि आपके इस सर्वस्वत्यागमें अभी अहंकारका त्याग शेष रह गया है। अभी आपके मनमें ऐसी धारणा बनी हुई है कि यह सर्वस्वत्याग वह महान् अभ्युदयशाली परमानन्द नहीं है। वह तो इससे भी उत्कृष्ट कोई दूसरी महान् वस्तु है, जो चिरकालकी साधनासे उपलब्ध होती है। ऐसी चिन्ता करनेसे धीरे-धीरे जब आपके संकल्प-ग्रहणमें पर्याप्त वृद्धि हो गयी, तब वह त्याग कहीं अन्यत्र चला गया। जैसे वायुके स्पन्दनसे युक्त वृक्षका निश्चल रहना असम्भव है, वैसे ही जो थोड़ी-सी भी

चिन्ताको अपने हृदयमें स्थान देता है, उसका त्याग कैसे सिद्ध हो सकता है ?

राजन्! चिन्ता ही चित्त कहलाती है। संकल्प तो उस चित्तका दूसरा नाम है। भला, उस चिन्ताके स्फुरित रहते हुए वस्तुतः चित्तका त्याग कैसे सम्भव है ? साधुशिरोमणे ! क्षणभरमें ही त्रिलोकीके आधारभूत चित्तके चिन्ताग्रस्त हो जानेपर निरञ्जन सर्वत्यागकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? आपका प्राप्त किया हुआ चिन्तामणिरूप त्याग, अवहेलना कर देनेसे आपकी सारी उत्कृष्ट निश्चिन्तताको लेकर चला गया। कमललोचन ! इस प्रकार सर्वत्यागरूपी चिन्तामणिके चले जानेपर आपने अपने संकल्परूपी नेत्रोंसे देखकर तपरूपी काँचको ही चिन्तामणि समझ लिया। जैसे दृष्टिभ्रम हो जानेपर जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमामें वास्तविक चन्द्रमाकी भावना हो जाती है, वैसे ही आपने इस दुःखभूत तपस्यामें ही दृढ़ ग्राह्यभावना कर ली है। पहले तो आपने मनको वासनाशून्य करके अनासक्त भावसे सर्वत्यागका उपक्रम किया और पीछे वासनायुक्त होकर अनन्त तपस्याकी क्रिया स्वीकार कर ली। इस क्रियामें तो दुःख-ही-दुःख है। साधो ! अब तो आप वर्धमान दुःखोंसे परिपूर्ण राज्यरूपी फंदेसे निकलकर वनवास नामक एक दूसरे सुदृढ़ बन्धनसे बँध गये हैं। इस समय आपको शीत, वात और आतप आदिकी चिन्ता पहलेसे दुगुनी हो गयी है। मैं तो यह समझता हूँ कि वनवासके गुण-दोषकी जानकारी न रखनेवालोंके लिये वनवास बन्धनसे भी अधिक कष्टप्रद हो जाता है। आपको मिला तो है काँचका टुकड़ा, परंतु आप समझ रहे हैं कि मुझे चिन्तामणि मिल गयी। कमललोचन

नरेश ! इस प्रकार मैंने मणि-प्राप्तिके प्रयत्नकी कथाके सदृश आपके चरित्रको सम्यक्‌रूपसे आपके सामने प्रकट कर दिया। अब आप स्वयं ही अपनी बुद्धिसे उस निर्मल बोध्य वस्तुका विचार कीजिये तथा सर्वत्याग और तपस्या—इन दोनोंमें आपको जो उत्तम प्रतीत हो, उसे हृदयमें धारण करके परिपक्व बनाइये।

राजसिंह ! अब आप पूर्ण तत्त्वबोधके लिये विन्ध्यगिरि-निवासी गजेन्द्रके वृत्तान्तकी व्याख्या सुनिये। वह बड़ी ही आश्चर्यजनक है। मैंने विन्ध्याचलके वनमें निवास करनेवाले जिस हाथीका वर्णन किया था, वही इस भूमिपर आप हैं। उसके जो दो श्वेतवर्णके दाँत थे, वे ही आपके वैराग्य और विवेक हैं। हाथीको आक्रान्त करनेमें तत्पर जो वह महावत था, वह आपका अज्ञान है, जो आपको दुःख दे रहा है। राजन् ! जैसे अत्यन्त बलशाली हाथीको निर्बल महावत दुःख दे रहा था, उसी प्रकार, यद्यपि आप अत्यन्त शक्तिसम्पन्न हैं, तथापि मूर्खतारूपी दुर्बल महावत आपको एक दुःखसे दूसरे दुःखमें तथा एक भयसे दूसरे भयमें पहुँचा रहा है। जिस वज्र-सदृश सुदृढ़ लोह-शृङ्खलासे वह हाथी बाँधा गया था, वह शृङ्खला आपका आशापाश है, जिससे आप सिरसे पैरतक बँधे हैं। राजर्षे ! आशा लोहकी जंजीरसे भी बढ़कर भयंकर, विशाल और सुदृढ़ होती है; क्योंकि लोह तो काल पाकर पुराना होनेपर नष्ट भी हो जाता है, परंतु आशा-तृष्णा तो दिनोंदिन बढ़ती ही चली जाती है। वहाँ पास ही छिपकर बैठा हुआ जो शत्रु महावत उस हाथीकी ओर देख रहा था, वह महावत

आपका अज्ञान* है, जो एकाकी बँधे हुए आपकी ओर क्रीडाके लिये आँख लगाये हुए है। साधो ! हाथीने जो शत्रुद्वारा किये गये शृङ्खला-बन्धनको तोड़ डाला था, वह आपके भोग एवं अकण्टक राज्यके त्यागके समान है; क्योंकि शस्त्र और शृङ्खला-बन्धनका तोड़ डालना तो कदाचित् आसान भी हो सकता है, किंतु मनसे भोगोंकी आशाका निवारण करना अत्यन्त दुष्कर है। जैसे हाथीद्वारा बन्धन तोड़ दिये जानेपर महावत ऊपरसे गिर पड़ा था, उसी तरह आपके राज्यका परित्याग कर देनेपर अज्ञानका पतन हो गया था। जिस समय आप वनके लिये प्रस्थित हुए थे, उसी समय आपने अज्ञानको क्षत-विक्षत कर दिया था, परंतु घायल होकर सामने पड़े हुए उसका मनस्त्यागरूपी महान् खड्गद्वारा वध नहीं किया। यही कारण है कि वह पुनः उठ खड़ा हुआ और आपके द्वारा की गयी अपनी पराजयका स्मरण करके उसने आपको इस तपःप्रपञ्चरूपी भीषण गड्ढेमें ढकेल दिया! यदि आपने राज्य-त्याग करते समय ही वैसी दुरवस्थामें पड़े हुए अज्ञानका वध कर दिया होता तो वह उसी समय नष्ट हो गया होता, फिर वह आपको तपरूपी गर्तमें नहीं गिरा पाता। राजन् ! हाथीके वैरी उस महावतने जो गोलाकार गड्ढेका निर्माण किया था, वह आपके अज्ञानने तपरूपी सम्पूर्ण दुःखोंका गर्त बनाकर आपको समर्पित किया है। वह गड्ढा जो कोमल लताओंसे आच्छादित किया गया था, वह आपका तपोदुःख ही स्वल्प गुणों तथा सज्जनोंके समागमसे आवृत है। नरेश ! इस प्रकार आज भी आप इस

---

* यह अज्ञानमें चेतनत्वका आरोप करके कहा गया है।

अत्यन्त भयंकर तथा दुःखदायक तपरूपी गर्तमें बँधे हुए पड़े हैं। भूपाल ! आप गज हैं, आशाएँ जंजीर हैं, अज्ञान शत्रुभूत महावत है, उग्र तपस्याका आग्रह ही गर्त है, भूतल विन्ध्यगिरि है। इस प्रकार मैंने आपका वृत्तान्त हाथीके उपाख्यानद्वारा कह सुनाया, अब आप जैसा करना उचित समझें, वैसा ही कीजिये।

(सर्ग ९०-९१)

कुम्भकी बातें सुनकर सर्वत्यागके लिये उद्यत हुए राजा शिखिध्वजद्वारा अपनी सारी उपयोगी वस्तुओंका अग्निमें झोंकना, पुनः देहत्यागके लिये उद्यत हुए राजाको कुम्भद्वारा चित्त-त्यागका उपदेश

(देवपुत्रके रूपमें)चूडालाने कहा—राजर्षे ! चूडाला बड़ी नीतिनिपुण तथा ज्ञेय वस्तुके ज्ञानसे सम्पन्न है, उसने उस समय जिस ज्ञानका उपदेश दिया था, उसे आपने क्यों नहीं स्वीकार किया ? वह तत्त्वज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ है तथा जो कुछ कहती और करती है, वह सब सत्य ही होता है; अतः आपको उसके कथनका आदरपूर्वक पालन करना उचित था। नरेश्वर ! यदि आपने चूडालाके वचनका आदर नहीं किया तो सर्वत्यागका ही पूर्णरूपसे आश्रय क्यों नहीं लिया ?

राजा शिखिध्वज बोले—प्रियवर ! मैंने राज्य छोड़ा, घर छोड़ा, धन-धान्यसम्पन्न देश छोड़ा, पत्नी भी त्याग दी; फिर भी आप कहते हैं सर्वत्याग क्यों नहीं किया—इसका क्या कारण है ?

(देवपुत्रके रूपमें) चूडालाने कहा—राजन् ! धन, स्त्री, गृह, राज्य, भूमि, छत्र और बन्धु-बान्धव—ये सब आपके तो हैं नहीं; फिर आपका सर्वत्याग हुआ कैसे ? आपका जो सबसे उत्तम भाग

****

है, उसका त्याग तो अभी हुआ ही नहीं। उसका पूर्णरूपसे परित्याग कर देनेपर ही आप सर्वत्यागी शोकरहित हो सकेंगे।

राजा शिखिध्वज बोले—देव ! अच्छा, यदि आप ऐसा मानते हैं कि यह सारा राजपाट मेरा नहीं है तो पर्वत, वृक्ष और लताओंसे परिपूर्ण यह सम्पूर्ण वन तो मेरा है न ? मैं इसीका परित्याग कर रहा हूँ।

कुम्भने कहा—राजन् ! यह पर्वतका तट, वन, गर्त, जल और वृक्षके नीचेकी भूमि—ये सब आपके तो हैं नहीं; फिर आपका सर्वत्याग कैसे सम्पन्न हुआ ? आपका जो सबसे उत्तम भाग है, वह तो अभी बिना त्यागा हुआ ही पड़ा है। उसका पूर्णरूपसे त्याग कर देनेपर ही आप परम अशोक-पदको प्राप्त कर सकेंगे।

शिखिध्वज बोले—अच्छा, यदि ये वन आदि सारी वस्तुएँ मेरी नहीं हैं तो बावली और चबूतरा आदिसे युक्त यह मेरा आश्रम ही मेरा सर्वस्व है। मैं इसका अभी त्याग किये देता हूँ।

कुम्भने कहा—राजन् ! ये जो वृक्ष, बावली (जलाशय), चबूतरा, गुल्म, आश्रम और लताओंकी पंक्तियाँ हैं, इनमेंसे कुछ भी आपका नहीं है; फिर आपका सर्वत्याग कैसे सिद्ध हुआ ? अभी तो आपका सबसे उत्तम भाग पड़ा ही है, आपने उसका त्याग किया ही नहीं। उसका पूर्णरूपसे त्याग कर देनेपर ही आपको उत्कृष्ट अशोक-पद मिल सकेगा।

शिखिध्वज बोले—ठीक है, यदि ये सारी वस्तुएँ मेरी नहीं हैं तो ये पात्र आदि तथा मृगचर्म, दीवाल और कुटीर आदि ही मेरे सर्वस्व हैं। मैं इन्हींको छोड़ रहा हूँ।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! ऐसा कहकर राजा शिखिध्वजने भाण्ड आदि उन समस्त सामग्रियोंको आश्रमसे निकालकर एक जगह स्थापित किया, फिर सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके अग्नि प्रज्वलित की और उन सभी वस्तुओंको उस आगमें डालकर वे पुनः अपने आसनपर बैठ गये। तत्पश्चात् उन्होंने अक्षमाला तथा मृगचर्मको भी उसी आगमें झोंक दिया और कमण्डलु एक श्रोत्रिय ब्राह्मणको दे दिया; क्योंकि ऐसा नियम है कि अपनी जो उत्तम वस्तु हो, उसे या तो किसी महात्माको दे दे अथवा अग्निमें जला दे। फिर राजाने अपनी कोमल चटाईको भी चित्तशुद्धि तथा चेतन ब्रह्ममें विश्राम-प्राप्तिके लिये उसी धधकती आगमें फेंक दिया। फिर कुम्भको सम्बोधित करके वे बोले—'कुम्भ ! जो वस्तु त्याज्य है, उसे सदा शीघ्र-से-शीघ्र त्याग देना चाहिये। साधो ! मैं निष्क्रिय होनेके लिये अपनी क्रियोपयोगी सारी वस्तुओंका त्याग कर रहा हूँ; क्योंकि अयोग्य वस्तुको कौन ढोता फिरे।'

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—राघव ! तदनन्तर राजा शिखिध्वजने अपनी सूखी फूसकी कुटियाको, जो अपने अज्ञानी मनके मिथ्याभूत संकल्पद्वारा कल्पित थी, जलाकर भस्म कर दिया। उन मौनी राजाकी बुद्धि समतायुक्त हो गयी थी और मन उद्वेगरहित हो गया था, अतः उन्होंने वहाँ जो कुछ भी सामग्री शेष रह गयी थी, उस सबको क्रमशः जला दिया। यहाँतक कि उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी लँगोटी और भोजनपात्र तथा भोजन आदिको भी फूँक दिया। जब सूखी लकड़ीके साथ-साथ वे बर्तन आदि सारे पदार्थ आगमें जल रहे थे, उस समय जिनका देहमात्र

शेष रह गया था वे राजा शिखिध्वज रागरहित हो प्रसन्नतापूर्वक बोले।

शिखिध्वजने कहा—देवकुमार! आश्चर्य है, चिरकालके पश्चात् आपने अपने ज्ञानोपदेशद्वारा मुझे प्रबुद्ध कर दिया, जिससे अब मैं वस्तु-विषयक वासनाका परित्याग करके सर्वत्यागी होकर स्थित हूँ तथा केवल, शुद्ध, सुखसे सम्पन्न और ज्ञानवान् हो गया हूँ। जिसमें ममता-संकल्पप्रयुक्त संग्रहक्रम वर्तमान है, ऐसी यह सामग्री किस कामकी। अब तो नाना प्रकारके बन्धनोंके हेतुभूत विषय ज्यों-ज्यों प्रक्षीण होते जा रहे हैं, त्यों-त्यों मेरा मन परमानन्दमें निमग्न होता जा रहा है। मुझे शान्ति मिल रही है। मैं परमानन्दस्वरूपको प्राप्त हो रहा हूँ और विजयी हो रहा हूँ; अतः अब मैं पूर्ण सुखी हूँ। मेरे सम्पूर्ण बन्धन नष्ट हो गये; क्योंकि मैंने सर्वत्याग कर दिया। देवपुत्र! महान् त्याग करनेके कारण अब दिशाएँ ही मेरे लिये वस्त्र हैं और दिशाएँ ही मेरे लिये घर हैं। यहाँतक कि मैं स्वयं ही दिशाओंके समान स्थित हूँ। अब बताइये और क्या शेष रह गया है?

कुम्भने कहा—महाराज शिखिध्वज! अभी भी आपने सभी वस्तुओंका पूर्णतया त्याग नहीं किया है, अतः सर्वत्यागजन्य परमानन्दकी प्राप्तिका व्यर्थ ही अभिनय मत कीजिये। अपने सर्वोत्तम भागका तो अभी आपने त्याग किया ही नहीं, जिसके पूर्णतः त्याग करनेसे ही आपको परम अशोक-पदकी प्राप्ति हो सकेगी।

शिखिध्वज बोले—देवतात्मज! अब तो सर्वत्यागमें मेरा यह शरीर, जो रक्त-मांसमय तथा इन्द्रियसे युक्त है, शेष रह गया

है; इसलिये अब मैं पुनः उठकर बिना किसी विघ्न-बाधाके इस शरीरको गड्ढेमें गिराकर विनष्ट कर दूँगा और सर्वत्यागी हो जाऊँगा।

कुम्भने कहा—राजन्! इस बेचारे निरपराध शरीरको आप क्यों महान् गर्तमें गिराना चाहते हैं? आप तो उस अज्ञानी बैलके सदृश प्रतीत होते हैं, जो कुपित होनेपर अपने बछड़ेको ही मारता है। यह बेचारा शरीर तो जड, तुच्छ और मूकात्मा है। सदा ध्यानस्थ-सा बना रहता है। इसने आपका कोई अपराध भी नहीं किया है, अतः व्यर्थ ही आप इसका त्याग मत कीजिये। जैसे वायुद्वारा स्पन्दन (फलादिका पतन) होनेपर फलवान् वृक्षका कोई अपराध नहीं माना जाता, उसी प्रकार सुख-दुःख आदिका अनुभव-स्थान होनेमात्रसे शरीरको अपराधी नहीं कहा जा सकता। स्पन्दनशील वायु ही बलपूर्वक फल, पल्लव और पुष्पोंको गिराती है, फिर बेचारे साधुस्वभाव वृक्षका क्या अपराध? इसी प्रकार साधु शरीरने साधु आत्माका कौन-सा अपराध किया है? कमललोचन! साथ ही, शरीरका त्याग कर देनेपर भी आपका सर्वत्याग निष्पन्न तो होगा नहीं; फिर व्यर्थ ही आप इस निरपराध शरीरको गड्ढेमें क्यों फेंक रहे हैं? देहका त्याग कर देनेपर सर्वत्याग सिद्ध नहीं होता। जैसे उन्मत्त गजराज वृक्षको तहस-नहस कर देता है, उसी तरह जिसके द्वारा यह शरीर क्षुब्ध हो उठता है, उस पापात्माका यदि आप पूर्णतया त्याग करते हैं तभी आप महान् त्यागी हैं। भूपते! उस पापात्माका परित्याग कर देनेपर देहादि समस्त पदार्थोंका अपने-आप त्याग हो जाता है। यदि उसका त्याग नहीं हुआ तो गर्तमें गिरकर नष्ट हुआ भी शरीर

उस पापात्मासे बारम्बार उत्पन्न होता रहेगा।

शिखिध्वज बोले—सौन्दर्यशाली देव! इस शरीरका संचालन करनेवाला वह पापात्मा कौन है? जन्मादि कर्मोंका बीज क्या है और किसका त्याग कर देनेपर सर्वत्याग सम्पन्न होता है?

कुम्भने कहा—साधुस्वभाव नरेश! शरीर अथवा राज्यका त्याग कर देनेसे तथा कुटिया जलाकर भस्म कर देनेसे सर्वत्याग सम्पन्न नहीं होता, वह तो सर्वात्मक एवं सर्वव्यापी संकल्पद्वारा सबके एकमात्र कारणभूत सर्वात्माका परित्याग कर देनेपर ही निष्पन्न होगा।

शिखिध्वज बोले—समस्त तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ कुम्भ! अच्छा यह बतलाइये आपने जिस सर्वथा एवं सर्वदा त्यागनेयोग्य, सर्वगत एवं सर्वात्मक वस्तुका नाम लिया है, वह सर्वात्मा किसे कहते हैं?

कुम्भने कहा—नरेश्वर! आप चित्तको ही भ्रम, चित्तको ही पापात्मा पुरुष और चित्तको ही जगज्जाल समझिये। यह चित्त ही 'सर्व'—सर्वात्मा कहलाता है। महीपाल! जैसे वृक्षका बीज वृक्ष ही होता है, उसी तरह मन ही राज्य, देह और आश्रम आदि समस्त वस्तुओंका बीज है। अतः सबके बीजभूत उस मनका परित्याग कर देनेपर सबका त्याग स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। भूपते! उस मनके त्याग-अत्यागपर ही सर्वत्यागका होना-न-होना निर्भर करता है। राजन्! ये राज्य अथवा कानन आदि सभी वस्तुएँ चित्तयुक्त अर्थात् चित्तके साथ सम्बन्ध रखनेवाले पुरुषके लिये केवल दुःखरूप हैं और जिसका चित्तके साथ सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है, उसके लिये ये ही परम सुखस्वरूप हैं। जैसे बीज समय पाकर

वृक्षरूपमें परिणत हो जाता है, वैसे ही यह चित्त ही जगत् एवं देहादि आकार धारण करके सबमें व्याप्त हो रहा है। जैसे वायुसे वृक्ष, भूकम्पसे पर्वत और लोहारसे धोंकनी संचालित होती है, उसी प्रकार इस शरीरका संचालक चित्त है। राजन्! इस चित्तको आप समस्त प्राणियोंके उपभोगोंका, जरा-मरण और जन्म आदि देहधर्मोंका तथा महामुनियोंके धर्मोंका अटूट खजाना ही समझिये। चित्त ही अपने संकल्पद्वारा जगत् तथा देहादि विविध आकार धारण करके सबमें व्याप्त हो रहा है। महीपते! इस प्रकार चित्त ही सब कुछ बनता है; अतः उसका त्याग हो जानेपर सारी आधि-व्याधियोंकी सीमाका विनाश करनेवाला सर्वत्याग अपने-आप ही सिद्ध हो जाता है। त्यागके तत्त्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजन्! चित्तत्यागको ही सर्वत्याग कहा जाता है। महाबाहो! उसके सिद्ध हो जानेपर विज्ञानानन्दघन सत्य वस्तुका अनुभव अपने-आप ही अवश्य हो जाता है। चित्तका अभाव हो जानेपर द्वैत-अद्वैत आदि सभी भावनाओंका सर्वथा विनाश हो जाता है और एकमात्र शान्त, निर्मल, अनामय परमपद ही शेष रह जाता है। चित्तको इस संसाररूपी धानका खेत कहा जाता है। जैसे जल ही तरङ्गरूपसे दीख पड़ता है, वैसे विचित्र चेष्टाओंवाला चित्त ही अपने संकल्पसे भाव और अभावका आकार धारण करनेवाले पदार्थोंके रूपसे परिणत होता है। भूपते! चित्तविनाशरूपी सर्वत्यागसे सर्वदा सभी वस्तुएँ वैसे ही सुलभ हो जाती हैं, जैसे साम्राज्यकी प्राप्तिसे सांसारिक पदार्थोंका समस्त अभाव मिट जाता है। जैसे राज्यादि समस्त वस्तुओंका त्याग कर देनेपर अकेले

आप अवशेष रह गये हैं, वैसे ही सर्वत्याग कर देनेपर एकमात्र विज्ञानात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है।

राजन् सर्वत्यागरूपी ! रसका आस्वादन कर लेनेपर जरा-मरण आदि कोई भी भय पुरुषको बाधा नहीं पहुँचा सकता। निर्मल कान्तिवाले महत्त्वकी प्राप्तिका कारण भी सर्वत्याग ही है। अब आप सर्वत्याग करनेके लिये प्रस्तुत हो गये हैं, इसीसे आपको बृहत्तम बुद्धिस्थिरता प्राप्त हो रही है। नरेश्वर ! सर्वत्याग परमानन्दस्वरूप है। इसके अतिरिक्त अन्य सब अत्यन्त भीषण दुःखरूप है—यों विचारपूर्वक स्वीकार करके जैसा आप चाहते हों, उसीके अनुसार आचरण कीजिये। सर्वत्याग करनेवाले पुरुषके पास प्रारब्धानुसार सभी वस्तुएँ अपने-आप उपस्थित होती हैं। सर्वत्यागके अंदर आत्मप्रसादक ज्ञान वर्तमान रहता है। महाराज ! सर्वत्याग सारी सम्पत्तियोंका आश्रयस्थान है, इसीलिये जो कुछ भी ग्रहण नहीं करता, उसे सब कुछ दिया जाता है। भूपते ! सर्वत्याग करके आप शान्त, स्वस्थ, आकाशके समान निर्मल एवं सौम्य आदि जिस रूपमें होना चाहते हैं, उस रूपमें हो जाइये। महीपाल ! पहले आप सारी वस्तुओंका परित्याग कर दीजिये। तदनन्तर जिस मनसे उनका त्याग किया है, उस मनका भी लय कीजिये; फिर त्याग-अभिमानरूपी मलसे भी रहित होकर जीवन्मुक्तस्वरूप हो जाइये।

(सर्ग ९२-९३)

चित्तरूपी वृक्षको मूलसहित उखाड़ फेंकनेका उपाय और अविद्यारूप कारणके अभावसे देह आदि कार्यके अभावका वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम! इस प्रकार चित्तके परित्यागका उपाय कुम्भ ऋषिके बतलानेपर अपने अन्तःकरणमें बार-बार विचार करते हुए वे सौम्य राजा शिखिध्वज यह वचन बोले।

राजा शिखिध्वजने कहा—मुने! जाल जैसे व्याकुल मछलीको पकड़ लेता है, वैसे ही इस चित्तको पकड़ लेना तो मैं जानता हूँ, परंतु इसका त्याग मैं नहीं जानता। भगवन्! सबसे पहले तो आप मुझे चित्तका क्या स्वरूप है, यह ठीक-ठीक कहिये। इसके बाद प्रभो! चित्तके परित्यागकी यथावत् विधि बतलाइये।

कुम्भ बोले—महाराज! वासनाको ही चित्तका स्वरूप समझिये। उसका त्याग अत्यन्त सुगम और सुखसाध्य है। राज्यकी अपेक्षा उस त्यागमें अधिक आनन्द है और पुष्पकी अपेक्षा वह अधिक सुन्दर है। मूर्खके लिये तो चित्तका परित्याग करना उतना ही दुःसाध्य है, जितना कि पामरके लिये साम्राज्य प्राप्त करना।

राजा शिखिध्वजने कहा—मुने! आपके वचनसे चित्तका स्वरूप वासनामय है, यह तो जानता हूँ, परंतु उसका परित्याग वज्रको निगल जानेकी अपेक्षा भी अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ। यह चित्त संसाररूपी सुगन्धित पुष्प है, दुःखरूपी दाहजनक अग्नि है तथा शरीररूपी यन्त्रका संचालक है। इसका अनायास त्याग जिस तरह होता हो, वह बतलाइये।

कुम्भ बोले—साधो ! इस चित्तका सर्वथा नाश ही संसारका भी नाश है, वही चित्तका अच्छी प्रकारसे त्याग है—ऐसा दीर्घदर्शी महात्माओंने कहा है।

राजा शिखिध्वजने कहा—मुने ! परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये मैं चित्त-त्यागकी अपेक्षा तो चित्तका विनाश ही विशेष अच्छा समझता हूँ, परंतु सैकड़ों व्याधियोंके मूल इस चित्तका अभाव कैसे होता है ?

कुम्भ बोले—राजन् ! शाखा, फल और पल्लवोंसे युक्त चित्तरूपी वृक्षका अहंकार ही बीज है। अतः आप उस वृक्षको मूलसहित उखाड़ फेंकिये और अपना हृदय आकाशके सदृश निर्मल बना डालिये।

राजा शिखिध्वजने कहा—मुने ! चित्तका मूल क्या है, अङ्कुर क्या है और इसका कौन-सा खेत है, इसकी शाखाएँ और स्कन्ध कौन हैं तथा यह मूलसहित कैसे उखाड़कर फेंक दिया जाता है ?

कुम्भ बोले—महामते ! यह अहंकार ही इस चित्तरूपी वृक्षका बीज (मूल) है, इसे आप जान लीजिये। परमात्माकी माया ही इस मायामय संसारका खेत है। इसलिये इस चित्तका भी वह परमात्माकी माया ही खेत है। इस प्रथम उत्पन्न मूलसे अनात्म देहमें आत्मविषयक निश्चय (बुद्धि) ही इसका अङ्कुर है। जो निराकार निश्चयात्मक समझ है, वही बुद्धि कही जाती है। इस बुद्धि नामक अङ्कुरकी जो संकल्पस्वरूप स्थूलता उत्पन्न होती है, उसका चित्त और मन नाम पड़ा हुआ है। ये इन्द्रियाँ ही इस चित्तरूपी वृक्षकी दूरतक फैली हुई लम्बी विस्तृत शाखाएँ हैं और जन्म-मरणात्मक हजारों अनर्थोंके कारण शुभ और अशुभ-

रूप फलोंसे परिपूर्ण जो तुच्छ विषयभोग हैं, वे इसकी बड़ी-बड़ी अवान्तर शाखाएँ हैं। इस तरहके इस कठिन चित्तरूपी वृक्षकी शाखाओंका (विषयभोगोंमें आसक्तिका) वैराग्यसे प्रतिक्षण छेदन करते हुए आप उसके अहंकाररूप मूलको उखाड़ फेंक देनेवाले सच्चिदानन्द परमात्माके चिन्तनमें पूर्ण प्रयत्न कीजिये।

राजा शिखिध्वजने कहा—मुने! चित्तरूपी वृक्षकी शाखा आदिका छेदन करता हुआ मैं उसके मूलको अशेषरूपसे किस तरह उखाड़ फेंकूँ?

कुम्भ बोले—राजन्! फल और स्पन्दन आदिसे युक्त विविध वासनाएँ चित्तरूपी वृक्षकी शाखाएँ हैं। तीव्र विवेक-वैराग्यके द्वारा वे वासनारूपी शाखाएँ नष्ट हो जाती हैं; क्योंकि जिसका मन किसी विषयमें आसक्त नहीं है, जो मौनी और तर्क-वितर्कसे रहित है तथा जो न्यायसे प्राप्त हुए कार्यका शीघ्र सम्पादन कर लेता है, उस पुरुषका चित्त नष्ट हो जाता है। जो पुरुष अपने पुरुषार्थसे चित्तरूपी वृक्षकी शाखाओंको काटता रहता है, वह मूलका भी उच्छेद करनेमें समर्थ हो जाता है। चित्तवृक्षकी शाखाओंका छेदन करना तो गौण है और मूलका छेदन करना प्रधान है, इसलिये आप अहंकाररूप मूलका उच्छेद करनेमें तत्पर हो जाइये। महाबुद्धे! मुख्यरूपसे इस चित्तरूपी वृक्षको मूलसहित जला डालिये। ऐसा करनेपर अचित्तता हो जायगी।

राजा शिखिध्वजने कहा—मुने! अहंभावात्मक चित्तरूपी वृक्षके बीज (मूल) को जलानेमें कौन-सी अग्नि समर्थ होगी?

कुम्भ बोले—राजन्! 'मैं कौन हूँ' इस विषयका विवेक-विचारपूर्वक यथार्थ ज्ञान ही चित्तरूपी वृक्षके मूलको जलानेवा

अग्नि कही गयी है।

राजा शिखिध्वजने कहा—मुने ! इस विषयमें मैंने अनेक बार अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह विचार कर लिया है—मैं अहंकार नहीं हूँ और न पृथ्वी और उसके अन्तर्गत वनमण्डलादिसे मण्डित जगत् ही हूँ। जड होनेके कारण पर्वतका तट, विपिन, पत्र, स्पन्दन आदि और देहादि मैं नहीं हूँ तथा मांस, हड्डी और रक्त आदि भी मैं नहीं हूँ। मैं न तो कर्मेन्द्रिय हूँ और न ज्ञानेन्द्रिय हूँ। जड होनेके कारण मन-बुद्धि भी मैं नहीं हूँ। जैसे नेत्रदोषसे आकाशमें प्रतीत होनेवाला वृक्ष आकाशसे भिन्न नहीं है, वैसे ही परमात्माके संकल्पसे उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण पदार्थ परमात्मासे भिन्न नहीं हैं, परमात्माके ही स्वरूप हैं। भगवन् ! इस तरह अहंकाररूपी मलका परिमार्जन जानता हुआ भी मैं अन्तर्यामी परमात्माको नहीं जान सका हूँ। इसलिये मैं रात-दिन चिन्तासे जल रहा हूँ। इस चित्तरूपी वृक्षके बीज अहंकाररूप मलका त्याग करना मैं नहीं जानता हूँ; क्योंकि बार-बार त्याग करनेपर भी मैं उससे छुटकारा नहीं पा सका हूँ। मुने ! शरीर आदिमें अहंताभिमानरूप जो दोष है उसका कारण शरीर आदिका परिज्ञान ही है, यह मैं जानता हूँ। मुनीश्वर ! वह जिस उपायसे शान्त हो जाय, वह उपाय मुझसे कहिये। यह अहंभाव जीवात्माको विषयोंकी ओर आकृष्ट करता है, जिससे दुःख ही प्राप्त होता है। इसलिये उस दुःखकी शान्तिके लिये विषय-भोगरूपी दृश्यवर्गका जिस उपायसे अभाव होता हो, वह मुझसे कहिये। मुने ! जिस पदार्थका प्रत्यक्षात्मक कोई एक स्वरूप उपलब्ध हो रहा है, वह असत्-स्वरूप कैसे है ? हाथ, पैर आदिसे संयुक्त तथा क्रिया-फलरूप विलास आदिसे समन्वित

हमलोगोंसे सदा अनुभूत होनेवाला यह शरीर मिथ्या कैसे है ?

कुम्भने कहा—भूमिपाल ! इस संसारमें वास्तवमें जिस कार्यका कारण विद्यमान नहीं है, वह कार्य भी अपना अस्तित्व नहीं रखता, फिर उसका ज्ञान तो विभ्रम ही है। बिना कारणके यह शरीररूपी कार्य नहीं रह सकता। जिस द्रव्यका बीज नहीं है, उसकी उत्पत्ति कहाँ कभी होती है ? अर्थात् कभी नहीं। बिना कारणके जो कार्य सामने सत्की भाँति प्रतीत होता है उसे मृगतृष्णाजलके सदृश, देखनेवाले मनुष्यके भ्रमसे उत्पन्न (मिथ्या) समझिये। मिथ्या भ्रमसे विद्यमान शरीर आदिको आप अविद्यमान ही जानिये; क्योंकि अत्यधिक यत्नशील मनुष्यको भी यह मृगतृष्णाजल प्राप्त नहीं होता। राजन् ! शरीर आदि अस्थिपञ्जररूपी यह कार्य बिना कारणके ही अनुभूत हो रहा है। इसलिये वास्तवमें किसीसे उत्पन्न न होनेके कारण इसे अविद्यमान ही जानिये।

राजा शिखिध्वज बोले—मुनीश्वर ! हाथ, पैर आदिसे युक्त प्रतिदिन दिखायी देनेवाले इस शरीरका भला पिता कारण कैसे नहीं है ?

कुम्भने कहा—राजन् ! कारणरूप पिताका भी अभाव होनेसे वास्तवमें पिता भी कारण नहीं है। जो पदार्थ असत्से उत्पन्न होता है, वह असत् ही है। कार्यभूत पदार्थोंका कारण बीज कहा जाता है इसलिये जिस कार्यका कारण नहीं है, वह कार्य भी कारणरूप बीजका अभाव रहनेसे नहीं है। मनुष्यको जो उसका ज्ञान होता है वह तो बिलकुल विभ्रम है। अवश्य ही जो वस्तु बीजरूप कारणसे रहित है, वह है ही नहीं। अतः उसका जो मनुष्यको ज्ञान

होता है, वह नेत्र-दोषसे दीखनेवाले दो चन्द्रमा, मरुभूमिमें जल और वन्ध्यापुत्रके समान बुद्धिका भ्रम ही है—मिथ्या है।

(सर्ग ९४)

जगत्‌के अत्यन्ताभावका, राजा शिखिध्वजको परम शान्तिकी प्राप्तिका तथा जाननेयोग्य परमात्माके स्वरूपका प्रतिपादन

राजा शिखिध्वजने पूछा—मुने! ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त जो कुछ यह संसार भासित होता है वह यदि भ्रमरूप ही है तो फिर वह दुःखदायी कैसे है?

कुम्भ बोले—राजन्! वास्तवमें पितामहकी भी सत्ता नहीं है, फिर उनके द्वारा निर्मित प्रपञ्चकी सत्ता हो ही कैसे सकती है। जो वस्तु असत् वस्तुसे सिद्ध की जाती हो, वह त्रिकालमें भी सिद्ध नहीं हो सकती। यह जो भूत-सृष्टि दिखायी पड़ती है, वह मृगतृष्णाजलके सदृश मिथ्या ही उदित हुई है, इसलिये शुक्तिमें रजतज्ञानके सदृश विचारसे ही उसका विलय हो जाता है। कारणका अस्तित्व न होनेसे कार्यकी सत्ता हो ही नहीं सकती। जो असत् कारणसे असत् कार्यकी उत्पत्ति प्रतीत होती है, उसका स्वरूप मिथ्याज्ञानके अतिरिक्त और कोई दूसरा हो ही नहीं सकता। मिथ्याज्ञानके कारण दिखायी पड़नेवाला पदार्थ किसी कालमें भी अस्तित्व नहीं रख सकता, क्या कहीं किसीने मृगतृष्णाजलसे घड़े भरे हैं?

राजा शिखिध्वजने कहा—मुनिवर! अनन्त, अजन्मा, अव्यक्त, आकाशकी तरह निराकार, अविनाशी, शान्त, परब्रह्म परमात्मा सृष्टिके आदिरचयिता ब्रह्माका कारण क्यों नहीं है?

कुम्भ बोले—राजन्! वास्तवमें शुद्ध निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्म न तो कार्य है और न कारण ही है; क्योंकि निर्विकार होनेसे उसमें कारणत्व और कार्यत्वका अभाव है। इसलिये वस्तुतः ब्रह्म न कर्ता है, न कर्म है और न कारण ही है। उसका न कोई निमित्त है और न कोई उपादान है। वह तर्कका विषय नहीं है; अतः वह अविज्ञेय है। जो अतर्क्य, अविज्ञेय, शान्त, विकारशून्य और कल्याणरूप है, उसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व किस तरह, किसका, किससे और किस समय होगा? अतः यह जगत् वास्तवमें किसीसे उत्पन्न नहीं है और न इसकी सत्ता ही है। इसलिये आप न कर्ता हैं और न भोक्ता हैं; किन्तु सब कुछ शान्त, अजन्मा, कल्याणमय ब्रह्म ही है। वास्तवमें कारणकी सत्ता ही नहीं है। इसलिये यह जगत् किसीका भी कार्य नहीं है; क्योंकि कारणका स्वरूप न रहनेसे जो कार्यस्वरूप दिखायी देता है, वह केवल भ्रमसे ही है। किसीका कार्य न होनेसे इस सृष्टिका तीनों कालोंमें अत्यन्त अभाव है। यह जगत् जब किसी भी कारणका कार्य नहीं है, तब अनायास समस्त पदार्थोंका मिथ्यात्व सिद्ध हो जाता है। पदार्थोंका मिथ्यात्व सिद्ध हो जानेपर फिर ज्ञान किसका और जब ज्ञानका ही अभाव सिद्ध हो गया, तब अहंकारका कोई कारण ही नहीं रहता। इसलिये राजन्! आप शुद्ध मुक्त ही हैं। फिर बन्धन और मोक्षकी बात ही क्या है?

राजा शिखिध्वजने कहा— भगवन्! मैं वास्तविक तत्त्वको जान गया। आपने बहुत ही उत्तम और युक्तियुक्त कहा है। मैं यह भी समझ गया कि कारणका अभाव होनेसे ब्रह्म भी जगत्का कर्ता नहीं है। अतः कर्ताके अभावसे जगत्का अभाव है और जगत्के

अभावसे पदार्थका अभाव है। इससे उसके बीज चित्त आदिका भी अभाव है और इसीसे अहंता आदिकी भी सत्ता नहीं है। इस प्रकारकी स्थिति होनेपर मैं विशुद्ध ही हूँ, सर्वज्ञ हूँ और कल्याण-स्वरूप हूँ; क्योंकि परमात्मासे भिन्न दृश्य विषय कुछ है ही नहीं, यह आपने मुझे समझा दिया। इसलिये सब पदार्थोंका स्वरूप जान लेनेपर 'अहम्' आदिसे लेकर अन्ततकके जितने दृश्य पदार्थ हैं, वे सब असद्रूप ही भासते हैं; इसलिये मैं आकाशकी भाँति शान्त हुआ समभावसे नित्य स्थित हूँ। अहो ! देश, काल, कला एवं क्रियाओंसे युक्त यह जो जगत्‌के पदार्थोंकी नाना दृष्टि थी, वह दीर्घकालके अनन्तर शान्त हो गयी अर्थात् मुझे दृश्य जगत्‌के अभावका ज्ञान हो गया। अब केवल अविनाशी शान्त ब्रह्म ही स्थित है। अब मैं शान्तिमय मुक्तस्वरूप और परिपूर्ण हूँ। मैं क्रिया, उत्पत्ति और विनाशसे रहित हूँ। मैं अतिशय शुभ, कल्याणस्वरूप विशुद्ध परमात्मस्वरूप हूँ।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! राजा शिखिध्वज पूर्वोक्त रीतिसे परब्रह्ममें विश्राम पाकर दो घड़ीतक वायुरहित स्थानमें दीपशिखाकी तरह निश्चल तथा शान्तचित्त हो गये। फिर जब राजा शिखिध्वज निर्विकल्प समाधिमें स्थित थे, तब अपनी सहज लीलाभरी वाणीसे कुम्भने उन्हें तत्काल जगाया।

कुम्भने कहा—राजन् ! अब आप अज्ञानरूपी निद्रासे जाग गये हैं और कल्याणरूप होकर स्थित हैं। प्रिय ! जब परमात्माका एक बार स्पष्टरूपसे अनुभव हो जाता है, तब उसके लिये समस्त अनिष्टकारक पदार्थोंका अभाव हो जाता है। अतः अब आप समस्त कल्पनारूपी दोषोंसे रहित हो जीवन्मुक्त बन गये हैं।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम ! जब मुनिश्रेष्ठ उस कुम्भने राजा शिखिध्वजको इस तरह समझाया, तब वे ज्ञानी हों गये और महामोहसे रहित हो शोभा पाने लगे।

(तब) *कुम्भने कहा*—महाराज ! मैंने पहले जिस आत्मतत्त्वका उपदेश दिया था, उसे ग्रहणकर अज्ञानरूपी आवरणसे मुक्त हो जानेके कारण आप देदीप्यमान होकर खूब शोभा पा रहे हैं। अब आपको जाननेके लिये जो यह कुछ बच गया है, उसे सुनिये। राजन् ! यह जो कुछ भी स्थावर, जङ्गम नानाविध आकार-प्रकारसे भरा हुआ जगत् दिखायी पड़ता है, वह सब कल्पकी समाप्तिमें विनष्ट हो जाता है। तदनन्तर जब महाकल्पकी लीला समाप्त हो जाती है, तब एकमात्र प्रसन्न, गम्भीर, सर्वव्यापक सच्चिदानन्द परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है। वह परमात्मा केवल चिन्मय, विशुद्ध, शान्त, परम अनन्त, सम्पूर्ण कल्पनाओंसे रहित और परम दिव्य ज्ञानस्वरूप है। वह तर्करहित, अविज्ञेय, समस्वरूप, कल्याणमय, निन्दारहित, ज्ञानसे परिपूर्ण एवं निर्वाण ब्रह्मस्वरूप है। इसलिये राजन् ! परमात्मासे भिन्न कोई भी दूसरी कल्पना इस संसारमें है ही नहीं। आपको जो निर्मल परमात्मतत्त्व ज्ञात हुआ है, वही परिपूर्ण और अविनाशी ब्रह्म है। सम्पूर्ण आकार-प्रकारोंसे युक्त हो प्रकट हुआ-सा वह सर्वस्वरूप होकर सदा ही स्थित रहता है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे अगम्य होनेके कारण वह अनिर्वचनीय, अति उत्तम और विलक्षण पदार्थ है। वह सर्वस्वरूप परमात्मा सबका आत्मा है। वह अति सूक्ष्म, शुद्ध तथा अनुभवस्वरूप है। वह वास्तवमें न कर्ता है, न कर्म है और न कारण ही है। वह सत्-चित्-आनन्दमय परमात्मा अविनाशी,

अगम्य तथा स्वयं अनुभवस्वरूप है। यह जगत् यथार्थरूपसे जान लिये जानेपर परम कल्याणकारक हो जाता है; क्योंकि यह परमात्माके संकल्पसे उत्पन्न होनेके कारण परमात्माका स्वरूप ही है। किंतु यदि जगत् यथार्थरूपसे न जाना गया तो वह भयंकर दुःख देनेवाला और अकल्याणकारक होता है। जैसे अग्नि चित्र-विचित्ररूपसे आविर्भूत हुई भी वास्तवमें वह अपने ही स्वरूपसे रहती है, वैसे ही संकल्पसे अन्यान्य रूपोंमें आविर्भूत हुई भी ब्रह्मसत्ता अपने यथार्थ ब्रह्मरूपसे ही स्थित रहती है। वास्तवमें जगत्का कोई भी कारण नहीं है; अतः इसका तीनों कालोंमें अत्यन्त अभाव है। ब्रह्म ही जगत्के रूपमें प्रतीत होता है।

कुम्भने कहा—महाराज! अपनी ही सत्तामें स्थित ब्रह्म वास्तवमें तो न किसीका उपादान कारण है और न किसीका निमित्त कारण है। वह केवल विशुद्ध अनुभवरूप है। अनुभवरूप उससे भिन्न दूसरा कुछ भी पदार्थ नहीं है। जो कुछ अहंता आदि जगत् प्रतीत होता है, वह भी ब्रह्मका संकल्प होनेके कारण अनन्त ब्रह्मरूप ही है।

राजा शिखिध्वज बोले—मुनिवर! मैं मानता हूँ कि कल्याणमय परमात्मामें वास्तवमें अहंतादि जगत् नहीं है; परंतु उसमें जो जगत्का ज्ञान होता है, वह किस कारणसे होता है, इसे शीघ्र मुझसे कहिये।

कुम्भने कहा—साधो! असीम जगत्का विस्तार करनेवाला जो अनादि-अनन्त ब्रह्म है, वही अपने संकल्पसे जगत् और जगत्के ज्ञानके सदृश बनकर अवस्थित है; इसीलिये वही जगत्-स्वरूप कहा जाता है। जिस प्रकार जलमें रस सार वस्तु है, उसी प्रकार सब पदार्थोंकी सार वस्तु परमात्मा ही है। यदि शान्त,

ब्रह्मरूप पद जगत्‌का कारण माना जाय तो फिर निष्क्रिय, अगम्य, अतर्क्य आदि शब्दोंसे जो ब्रह्मका वर्णन किया गया है, वह कैसे सिद्ध होगा ? इन सब युक्तियोंसे यह निश्चित होता है कि वास्तवमें वह ब्रह्म किसी भी कार्यका न निमित्त कारण है और न उपादान कारण ही है, अतः इस सृष्टिका अस्तित्व किसी कालमें है ही नहीं। चिन्मय परमात्माके अतिरिक्त इस सृष्टिकी दूसरी कोई सत्ता है ही नहीं, जिससे कि उसका वर्णन किया जाय। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जड दृश्य जगत्‌की सत्ता है ही नहीं। जो भी कुछ यह दीखता है, वह एक तरहसे चैतन्यघन ही अपने संकल्पसे स्फुरित हो रहा है। वही अहंभाव, जगत् आदि शब्द और शब्दार्थरूप रसोंसे युक्त-सा होकर भासता है। घट, पट आदि जागतिक वस्तु चिन्मय नहीं हो सकती, क्योंकि जागतिक वस्तुओंका नाश अवश्यम्भावी है। साधो ! 'यह चेतन है और यह जड है'—इस प्रकारकी जो कल्पना होती है वह केवल चित्तकी चञ्चलता है, दूसरा कुछ भी नहीं है। संसारमें केवल चेतनतत्त्व ब्रह्मकी ही सत्ता है। द्वित्व और एकत्व कुछ नहीं है, केवल कल्पनामात्र है। राजन् ! इसलिये जगद्रूप पदार्थोंकी सत्ताका अभाव होनेपर उनकी भावनाकी असत्ता अनायास सिद्ध हो जाती है। सम्पूर्ण भावनाओंकी असत्ता होनेपर तो आपकी अहंभावनाका अस्तित्व कैसे रह सकता है ? अहंभावका अभाव होनेपर फिर दूसरा बचता ही कौन है जिसे कि चित्त कहा जाय। इसलिये चित्त ही अहंरूप है। अहमर्थसे भिन्न दूसरा चित्त नामक पदार्थ है ही नहीं और जीव-ब्रह्मभेद तथा द्रष्टा और दृश्यका भेद भी नहीं है। अतः वासनासे रहित, शान्त-मनसे युक्त और मौनी हो जानेपर आप अनन्त सच्चिदानन्दमय हो जाते हैं। शुद्ध चैतन्यदृष्टिके सम्बन्धसे जड पदार्थकी कदापि सिद्धि न होनेके

कारण, जड पदार्थोंकी भावनाका भी अभाव हो जानेसे भावना-जनित जीवरूप नहीं रहता, केवल स्वयं परमात्मा ही रहता है। 'सब ब्रह्मस्वरूप ही है' इत्यादि वेदार्थ-भावनासे जनित ब्रह्मसाक्षात्कारद्वारा केवल चिन्मय ब्रह्मके ही प्रकाशित हो जानेपर फिर शोक कहाँ ? फिर तो, शोकका अत्यन्त अभाव हो जाता है। समस्त द्वैतका बाध हो जानेपर एक ब्रह्मरूप ही रह जाता है। वह ब्रह्म विशुद्ध, कारणशून्य, शाश्वत एवं आदि और मध्यसे रहित है।

(सर्ग ९५—९७)

चित्त और संसारके अत्यन्त अभावका तथा परमात्माके भावका निरूपण

कुम्भ कहते हैं—राजन्! चित्त नामका पदार्थ किसी कालमें, किसी देशमें या किसी वस्तुरूपमें कहीं है ही नहीं। यह जो चित्त-सा प्रतीत हो रहा है, वह अविनाशी ब्रह्म ही है। सम्पूर्ण चित्त आदि प्रपञ्च अज्ञानात्मक है, इसलिये उसका अस्तित्व ही नहीं है; क्योंकि जो अज्ञानात्मक वस्तु रहती है, उसका ज्ञानसे बाध हो जाता है। अतः अधिष्ठान ब्रह्ममें अहम्, त्वम्, तत् इत्यादि कल्पनाएँ कैसे रह सकती हैं ? जो कुछ भी यह प्रकट जगत् है, वह कुछ है ही नहीं। सब ब्रह्म ही है; अतः कौन किसको कैसे जाने ? प्राकृत प्रलयके अनन्तर सृष्टिके आरम्भमें जो यह चित्त आदि जगत् उत्पन्न प्रतीत होता है, वह वास्तवमें है ही नहीं। मैंने 'यह चित्त-सा मालूम पड़ता है,' इत्यादि रूपसे जो कहीं-कहीं निर्देश किया है, वह केवल आपके बोधके लिये ही किया है। उपादान आदि कारणरूपसे जो प्रसिद्ध हैं, उनका भी अस्तित्व नहीं

है और जितने भावरूपसे प्रसिद्ध हैं, उनका भी अस्तित्व नहीं है, इसलिये इस असत् जगत्का ब्रह्म कारण नहीं है; क्योंकि अज्ञानजनित भ्रान्तिरूप ही जगत् है, इसलिये उसकी किसी कालमें सत्ता ही नहीं है। अतः यह जो दिखायी पड़ता है, वह भासनात्मक ब्रह्म ही है, दूसरा नहीं। जो देव नाम और रूपसे रहित है, उस ब्रह्मरूप देवके विषयमें यह कहना कि यह देव इस मिथ्या जगत्का निर्माण करता है, वास्तवमें न तो युक्तिसंगत है, न सत्य है और न अद्वैतवादियोंका वैसा अनुभव ही है। राजन्! इसी प्रयोगसे चित्तका अस्तित्व नहीं है; क्योंकि जब जगत्का ही अस्तित्व नहीं है, तब जगत्के अन्तर्गत चित्तका अस्तित्व कैसे हो सकता है? चित्त तो वासनामात्ररूप है। वासना तब होती है, जब कि वासनाका विषय रहे। परंतु वासनाका विषय जो जगत् है, वह तो स्वयं असत् है, अतः चित्तका अस्तित्व ही कहाँ है? वास्तवमें तो कारणके अभावसे ही यह दृश्य वासनाका विषय जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ है; फिर चित्त आया ही कहाँसे?

अतः केवल चिन्मय विशुद्ध विज्ञानस्वरूप परमात्मा ही अपने संकल्पसे स्फुरित हो रहा है, इसलिये उससे भिन्न जगत्की सत्ता कहाँसे आयी? समस्त अनर्थोंको उत्पन्न करनेवाला **अहम्, त्वम्,** जगत् इत्यादि जो यह अनुभव होता है, वह वास्तविक नहीं है; स्वप्नके सदृश मिथ्या ही है। वासनाके विषय जगत्की असत्ता होनेसे वासनाकी सत्ता नहीं है, इसलिये फिर वासनात्मक चित्त ही कैसा, कहाँ, किससे और किस तरहसे हो सकता है? जो परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे रहित हैं, वे अज्ञानी ही चित्त और इस दृश्य जगत्को सत्य समझते हैं। वस्तुतः चित्त असत् है, उसका कोई आकार नहीं है और न वह उत्पन्न ही हुआ

है। क्योंकि लोक, शास्त्र और अनुभवसे दृश्य वस्तुमें अनादिता, अजता और स्थिरता सम्भव नहीं है। जिसकी बुद्धिमें लोक, शास्त्र और वेद प्रमाण नहीं हैं, वह अत्यन्त मूर्ख है। अतः सज्जनको उसके कथनका कभी अवलम्बन नहीं करना चाहिये। वास्तवमें शास्त्रीय बोधसे सब कुछ ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। न तो कहीं जगत् आदिका ज्ञान है, न कहीं चित्तका ही भाव है और न अभाव है तथा न कहीं द्वैत है, न कहीं अद्वैत ही है। यह समस्त जगत् आश्रयरहित, परम शान्त, अजन्मा, अनादि परमात्मरूप ही है। किंतु यह जो अज्ञानियोंद्वारा देखे गये रूपसे युक्त जगत् है, वह न नाना है और न अनाना ही है। अतः आप मौन व्रत धारण करके काठके सदृश स्थित रहिये।

राजा शिखिध्वजने कहा—महामुने! आपकी दयासे मेरा मोह नष्ट हो गया। मुझे ब्रह्मके स्वरूपकी स्मृति प्राप्त हो गयी, मेरा संदेह दूर हो गया। मेरी बुद्धि परम विश्रामको प्राप्त हो गयी, अब मैं आत्मवान् होकर स्थित हूँ। अब मैंने ज्ञेय वस्तु परमात्माके स्वरूपका अनुभव कर लिया, मैं महामौनी हो गया, मायारूपी महासमुद्रको पार कर गया; अब मैं शान्त हूँ, मैं अहंकारस्वरूप नहीं हूँ, आत्मज्ञानी बनकर सम्पूर्ण विकारोंसे रहित होकर अवस्थित हूँ। अहो! अति चिरकालतक मैं भवसागरमें परिभ्रमण करता रहा। परंतु अब मैं क्षोभरहित अक्षय परमपदको प्राप्त हो गया हूँ। मुने! इस तरह अवस्थित होनेपर मूर्खोंके माने हुए अहंतासहित ये भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों जगत् नहीं हैं। जो कुछ यह भासित हो रहा है, उसे ब्रह्मका संकल्प होनेके कारण मैं ब्रह्मरूप ही समझता हूँ।

कुम्भ बोले—राजन्! आपका कथन सत्य है। जिस

चिन्मय परमात्मामें वस्तुतः यह जगत् ही नहीं है, वहाँ आकाशमें बिना हुए प्रतीत होनेवाले गन्धर्व नगरके समान इस तरहका **'अहम्, त्वम्'** आदि अनुभव कैसा, कहाँ, किस निमित्तसे और किस प्रकार हो सकता है ? जैसे कड़ा, कुण्डल आदि भावनाके शान्त हो जानेपर सुवर्णमात्र अवशिष्ट रह जाता है, वैसे ही जगदादि भावनाओंके शान्त हो जानेपर एकमात्र ब्रह्म ही अवशिष्ट रह जाता है। 'देह आदि मैं हूँ' इस तरहकी भावना अत्यन्त विनाशकारक बन्धनके लिये होती है तथा 'देहादिरूप मैं नहीं हूँ' इस तरहकी भावना विशुद्ध मोक्षके लिये होती है। अहंकार-ज्ञानका अभाव मोक्ष है तथा अहंकार-ज्ञान ही बन्धन है। इसलिये राजन्! 'मैं वह साक्षात् ब्रह्म ही हूँ, अहंकार मैं नहीं हूँ' इस प्रकारके शुद्ध कैवल्यात्मक बोधसे युक्त होकर आप आत्मवान् हो जाइये। जिस तरह समुद्रमें तरङ्ग आदि वास्तवमें जलमात्र ही है उसी तरह ब्रह्ममें संसार और संसारके पदार्थ परमात्माका यथार्थ ज्ञान होनेपर एकमात्र परमात्मस्वरूप ही हैं। यह सृष्टि ही सृष्टि शब्दके अर्थसे रहित परब्रह्म है और परब्रह्म ही सृष्टि है; क्योंकि यही शाश्वत, परब्रह्म **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इस श्रुति-वाक्यका अर्थ है। समस्त शब्द और उनके अर्थकी भावनाका जहाँ अभाव है, वह शुद्ध, नित्य, चेतन, अनन्त परमात्मा ही ब्रह्म शब्दसे कहा जाता है; क्योंकि परमात्माका यथार्थ अनुभव हो जानेपर जब शब्द और उनके अर्थरूप संसारका ज्ञान नहीं रहता, तब एक अजर, शान्त ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है। वहाँ वाणीकी भी गति नहीं है।

(सर्ग ९८-९९)

ब्रह्मसे जगत्की पृथक् सत्ताका निषेध तथा जन्म आदि विकारोंसे रहित ब्रह्मकी स्वतः सत्ताका विधान

कुम्भने कहा—राजन्! जिसमें कारणता है, उसका वह

कार्य सिद्ध हो सकता है। वास्तवमें जो निर्विशेष ब्रह्म है वह तो किसीका कारण ही नहीं, फिर उससे कार्य होगा ही कैसे ? जो कार्य कारणसे उत्पन्न होता है, वह कारणके सदृश होता है। जो यहाँ उत्पन्न ही नहीं होता, उसमें भला सादृश्य आयगा ही कहाँसे ? भला आप बतलाइये तो सही, जिसका कोई बीज ही नहीं है, वह उत्पन्न कैसे होगा ? जो वस्तु अतर्क्य, अगम्य और निर्विशेष है उसमें बीजता ही कहाँ ठहरेगी ? देश और कालके वशसे सभी पदार्थ कारणसे युक्त और प्रमाणसे गम्य होते हैं। किंतु अकर्ता होनेसे ब्रह्म निमित्त और उपादान कारणोंका प्रमाण कैसे सिद्ध हो सकता है ? क्योंकि कर्ता, कर्म और कारणशून्य कल्याणमय परमात्मामें कारणता नहीं है, इसलिये जगत् शब्दार्थ-ज्ञानका वह कारण नहीं हो सकता। अतएव राजन् ! जो सत्स्वरूप निर्विशेष ब्रह्म है, वह 'मैं ही हूँ' इस प्रकार आप निश्चय कीजिये। यह प्रतीत होनेवाला जगत् अज्ञानियोंकी दृष्टिमें ही सत् है; क्योंकि वह एक अद्वितीय चिन्मय अजर और शान्त निर्विशेष ब्रह्म ही वास्तवमें प्रमाणित है। किंतु अलातचक्रके सदृश भ्रमाकृति जो यहाँ जगत्, चित्त आदि दिखायी देता है, वह मृगतृष्णाजल, दृष्टि-दोषसे दो चन्द्रमा आदिकी भ्रान्ति तथा बालकल्पित प्रेत आदिकी भाँति है। जो जगत् सर्वथा भ्रमात्मक है, वह भला सत्य नामसे कैसे कहा जा सकता है ? अज्ञानजनित भ्रान्ति ही अन्तःकरण और चित्तादि शब्दोंसे कही जाती है।

जैसे मरुमरीचिकामें प्रतीत होनेवाले जलका ज्ञान 'यह जल नहीं है', इस यथार्थ ज्ञानसे नष्ट हो जाता है, वैसे ही यह चित्त है। इस रूपसे हृदयमें दृढ़ हुआ जो अज्ञानात्मक विकार है, वह 'यह चित्त नहीं है', इस यथार्थ ज्ञानसे समूल विनष्ट हो जाता है। जैसे अज्ञान-भ्रमसे उत्पन्न हुई रज्जुमें सर्परूपता 'यह सर्प नहीं है'

इस तरहके हृदयमें दृढ़ हुए यथार्थ ज्ञानसे नष्ट हो जाती है, वैसे ही आत्मामें अज्ञान-भ्रमसे उत्पन्न हुआ मनोरूप चित्त 'यह चित्त नहीं है' इस तरहके हृदयमें दृढ़ हुए यथार्थ विज्ञानसे विनष्ट हो जाता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सारे पदार्थ हृदयमें अज्ञानसे उत्पन्न हुए हैं। वस्तुतः इस जगत्‌में चित्त नहीं है और इसी तरह अहंकार आदिसे संयुक्त देहादि कुछ भी नहीं है, किंतु एकान्त निर्मल एक आत्मा ही है। अज्ञानी जीवोंके द्वारा ही अज्ञानसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारकी रचना की गयी है। किंतु आज आपने संकल्पके अभावके द्वारा उन सबका परित्याग कर दिया है; क्योंकि जो पदार्थ संकल्पसे आता है, उसका संकल्पका अभाव होते ही विनाश हो जाता है। जैसे जलसे समुद्र परिपूर्ण है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन परमात्मतत्त्वसे यह सारा संसार परिपूर्ण है। न मैं हूँ, न आप हैं, न अन्य हैं, न ये सब पदार्थ हैं, न चित्त है, न इन्द्रियाँ हैं और न आकाश ही है। केवल एक विज्ञानानन्दघन विशुद्ध परमात्मा ही है। घट-पटादि दृश्य-जगत्‌के आकाररूपसे एक वह परमात्मा ही दिखायी देता है। 'यह चित्त है, यह मैं हूँ' इत्यादि तो असत्य कल्पनाएँ हैं। महीपते ! वास्तवमें तो इस त्रैलोक्यमें न कोई जन्म लेता है और न कोई मरता ही है। सत् और असत् भावनारूप यह केवल चेतनका संकल्पमात्र है। जब वास्तवमें एक सर्वात्मक व्यापक ब्रह्म परमात्मा ही प्रकट है, तब द्वित्व और एकत्व कैसे रह सकता है और कैसे संशय तथा भ्रम ही रह सकता है? मित्र ! केवल निर्मल अनन्त परमात्मस्वरूप आपका न तो कुछ विनष्ट हो सकता है और न कुछ बढ़ ही सकता है; क्योंकि जो अजन्मा, अजर, अनादि, अद्वितीय, विशुद्ध, सदा एकरूप, चिन्मय, संकल्प-रहित, सत्स्वरूप वस्तु है, वही परमात्म-तत्त्व है। (सर्ग १००)

——★——

राजा शिखिध्वजकी ज्ञानमें दृढ़ स्थिति तथा जीवन्मुक्तिमें चित्तराहित्य एवं तत्त्वस्थितिका वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुकुलभूषण राम ! इस प्रकार कुम्भके स्वाभाविक वचनोंपर विचार करके राजा शिखिध्वज उसी क्षण स्वयमेव आत्मपदमें स्थित हो गये। फिर तो उनके मन और नेत्रोंका व्यापार बंद हो गया, वाणी शान्त हो गयी तथा वे ध्यानस्थ होकर मनन करने लगे। उस समय उनके शरीरके सभी अवयव ऐसे निश्चल हो गये, मानो शिलातलपर खुदी हुई कोई मूर्ति हो। महाबाहो ! तदनन्तर दो ही घड़ीके बाद जब उनकी ध्यानमुद्रा भंग हुई और वे विकसित नेत्रोंसे कुम्भकी ओर देखने लगे, तब कुम्भरूपिणी चूडालाने राजासे प्रश्न करना आरम्भ किया।

कुम्भने पूछा—राजन् ! जो अत्यन्त प्रकाशमान, शुद्ध, विस्तृत एवं निर्मल है तथा जो निर्विकल्प-समाधिमें स्थित रहनेवाले योगियोंके लिये सुन्दर शय्यांके समान है, उस आत्मपदमें आपको आनन्दपूर्वक विश्रान्ति प्राप्त हो चुकी न ? आपका अन्तःकरण प्रबुद्ध हो गया न ? आपने भ्रान्तिका परित्याग कर दिया न ? ज्ञातव्यका ज्ञान प्राप्त कर लिया और द्रष्टव्य वस्तु देख ली न ?

शिखिध्वज बोले—भगवन् ! आपकी कृपासे मुझे उस महती पदवीका साक्षात्कार हो गया, जो निरतिशयानन्दकी भूमिका और समस्त उत्कर्षोंकी पराकाष्ठा है। अहो ! जाननेयोग्य वस्तुओंके ज्ञानसे सम्पन्न सन्त-महात्माओंका सङ्ग अपूर्व एवं सर्वोत्तम अमृतमय होता है, अतः सर्वोत्कृष्ट फल प्रदान करनेवाला है। प्रभो ! जिस महामृतकी उपलब्धि मुझे सारे जन्ममें भी नहीं हुई, वही आज आपके

समागमसे अनायास ही सुलभ हो गयी। परंतु कमललोचन ! इस अनन्त, आद्य एवं अमृतस्वरूप आत्मपदकी प्राप्ति मुझे पहले ही क्यों नहीं हो गयी ?

कुम्भने कहा—राजन् ! जब भोगेच्छाओंका परित्याग कर देनेसे मन पूर्णतः शान्त हो जाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियगणोंके भोगरूप दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है, तब चित्तमें उपदेशककी विमल उक्तियाँ उसी प्रकार स्थित हो जाती हैं, जैसे शुद्ध स्वच्छ वस्त्रपर कुंकुममिश्रित जलके छींटे। कमलनयन ! आपके अपने वासनास्वरूप अनन्त दोषोंका, जो अनेक जन्मोंके शरीरोंद्वारा संगृहीत किये हुए थे, परिपाक आज प्रकट हुआ है। साधुशिरोमणे ! कालद्वारा परिपक्व होकर सम्पूर्ण दोष शरीरसे निकल जाते हैं। सखे ! शरीरसे वासनात्मक दोषोंके निकल जानेपर गुरुदेव जो कुछ निर्मल उपदेश देते हैं, वह शीघ्र ही अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो जाता है। महामते ! दोषोंका परिपाक सम्पन्न हो जानेपर आज मैंने आपको उद्‌बुद्ध किया है। इसी कारण आज ही आपके अज्ञानका विनाश हो गया। आज आपके सभी दोष परिपक्व हो-होकर नष्ट हो गये। आज ही आपने सम्यक्‌रूपसे ज्ञानोपदेश धारण किया है। आज ही आप उपदेशसम्पन्न हुए हैं और आज ही आप प्रबोधवान् भी हुए हैं। सत्सङ्गके व्याजसे आज आपके समस्त शुभ-अशुभ कर्मोंका समूल विनाश हो गया। महीपते ! जबतक इस दिनका पूर्वभाग बीत रहा था, तबतक आपके चित्तमें 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' ऐसा अज्ञान वर्तमान था; परंतु भूपते ! इस समय मेरा वचनोपदेश श्रवण करके आपने अपने हृदयसे उस अज्ञानको

निकाल फेंका है, जिससे आपके चित्तका विनाश हो गया है; अतः अब आप भलीभाँति प्रबुद्ध हो गये हैं। राजन् ! जबतक हृदयमें मनका अस्तित्व वर्तमान रहता है, तबतक अज्ञान रहता है; किंतु ज्यों ही अचित्तरूपसे चित्तका विनाश हुआ, त्यों ही ज्ञानका अभ्युदय हो जाता है। द्वैत और अद्वैतकी दृष्टि ही चित्त है और वही अज्ञान भी कहा जाता है; इन दोनोंकी दृष्टिका जो विनाश है, वही ज्ञान और वही परमगति है। नरेश्वर ! जो प्रतीत होनेके कारण सत् और वास्तवमें न होनेके कारण असत् है तथा जो मिथ्या जगत्की कल्पनाका स्थान है, उस चित्तका तो आपने विनाश कर ही दिया। इससे अब आपका ज्ञान जाग उठा है और आप विमुक्त हो गये हैं। अतः अब आप शोकशून्य, आयासरहित, निःसङ्ग, अनन्य, आत्मज्ञानसम्पन्न, महान् अभ्युदयसे युक्त, मौनी एवं मुनि होकर अपने निर्मलस्वरूपमें स्थित रहिये।

शिखिध्वज बोले—भगवन् ! यों आपके कथनानुसार तो मूर्ख जीवके लिये ही चित्त है, ज्ञानीके लिये नहीं; किंतु प्रभो ! यदि आत्मज्ञानीके लिये चित्त है ही नहीं तो ये आप-जैसे जीवन्मुक्त मनुष्य मनसे रहित होकर जगत्में कैसे विचरण करते हैं ? यह बतलानेकी कृपा कीजिये।

कुम्भने कहा—तत्त्वज्ञ ! आप जैसा कह रहे हैं, यह ठीक वैसा ही है; इसमें थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं है। जैसे पत्थरमें अङ्कुर नहीं निकलता, उसी प्रकार जीवन्मुक्तोंका चित्त व्यापारशून्य हो जाता है; क्योंकि पुनर्जन्म लेनेमें सहायक जो घनीभूत वासना होती है, वही चित्त शब्दसे कही जाती है और वह आत्मज्ञानीमें रहती नहीं। आत्मज्ञानसम्पन्न पुरुष जिस वासनाद्वारा सांसारिक कर्मोंका व्यवहार करते हैं, उसे आप 'सत्त्व' नामवाली समझिये।

वह वासना पुनर्जन्मसे रहित होती है। जो सत्त्वमें स्थित हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सम्यक्प्रकारसे वशमें हैं, ऐसे जीवन्मुक्त महात्मा आसक्तिरहित होकर विचरते हैं; परंतु चित्तस्थ पुरुष वैसा कभी नहीं कर सकते। राजन्! अज्ञानसे आच्छादित चित्तको 'चित्त' कहते हैं और प्रबुद्ध चित्त 'सत्त्व' कहा जाता है। जो अज्ञानी हैं वे 'चित्त' में स्थित रहते हैं और महाबुद्धिमान् ज्ञानीलोग 'सत्त्व' में स्थित रहते हैं। भूपते! चित्त बारम्बार उत्पन्न होता है; किंतु सत्त्व पुनः नहीं पैदा होता; इसीलिये अज्ञानी बन्धनमें पड़ता है, ज्ञानी नहीं पड़ता। राजन्! मुझे यह ठीक-ठीक पता है कि आज आपने पूर्णरूपसे अपने चित्तका विनाश कर दिया है। जिससे आप सत्त्वसम्पन्न हो गये हैं और महात्यागी बनकर स्थित हैं। आज आपकी सारी वासनाएँ नष्ट हो गयी हैं, जिससे आपकी विशेष शोभा हो रही है।

मुने! मैं यह भी मानता हूँ कि आपका मन आकाशकी तरह निर्मल हो गया है। आप परम शान्तिको प्राप्त हो गये हैं और सिद्ध होकर सर्वोत्कृष्ट समस्थितिमें पहुँच गये हैं। राजन्! यह वही महात्याग है, जिसमें आपने अपने सर्वस्वरूप चित्तका परित्याग कर दिया है। भला, तप आपके कितने दुःखोंका विनाश करनेमें समर्थ होता। यह जो उपरतिरूप परम सुख है, यही अक्षय सुख है। यही वास्तवमें सत्य है। स्वर्गादिका जो थोड़ा-बहुत सुख है, वह सत्य नहीं है; क्योंकि वह विनाशशील है तथा उत्पत्ति एवं विनाशयुक्त होनेके कारण वर्तमान कालमें ही प्रतीत होता है।

राजर्षे! जैसे आकाशसे भी अत्यन्त निर्मल सच्चिदानन्द परमात्मासे सभी पदार्थ समुद्भूत होकर दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे ही वे उसी परमात्मामें विलीन भी हो जाते हैं। संकल्पसे ही जिनकी

उत्पत्ति हुई है, ऐसे पदार्थोंको आत्मज्ञानी महात्मालोग जलमें प्रतिबिम्बित सूर्योंकी तरह समझकर ग्रहण नहीं करते। सज्जन-शिरोमणे ! जगत्में जिसका चित्त स्पन्दनरहित हो गया है, उसके समीप संसार आ ही नहीं सकता; क्योंकि महीपाल ! इस त्रिलोकीमें जो-जो दुःख़ जीवको प्राप्त होते हैं, वे सभी चित्तकी चपलतासे ही उत्पन्न हुए रहते हैं। इसलिये जिसका चित्त स्थिर, शान्त, स्पन्दनशून्य और चञ्चलतारहित हो गया है, वही मनुष्य सदा परमानन्दमें निमग्न रहता है और वही साम्राज्य—परमात्म-साक्षात्कारका पात्र होता है।

शिखिध्वज बोले—सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करनेवाले विभो ! स्पन्द और अस्पन्द—ये दोनों किस प्रकार एकताको प्राप्त होते हैं, वह विधि मुझे शीघ्र बतलानेकी कृपा कीजिये।

कुम्भने कहा—राजन् ! जैसे सागर जलरूपसे एक है, उसी तरह यह सारा जगत् चिन्मात्रस्वरूप होनेके कारण एक ही वस्तु है; अतः जैसे तरङ्गें शुद्ध जलको ही उछालती हैं, वैसे ही बुद्धिवृत्तियाँ उसी चिन्मात्रको स्पन्दित करती हैं। तात ! श्रुतियाँ जिसका ब्रह्म, चिन्मात्र, अमल और सत्त्व आदि नामोंद्वारा गान करती हैं, उसीको मूढ़लोग जगद्रूपसे देखते हैं। इस संसारका स्वरूप तो चेतन परमात्माका स्पन्दनमात्र है, इसलिये यथार्थ दृष्टिवालोंके लिये तो इसका विनाश ही हो जाता है, परंतु जिन्हें यथार्थ दृष्टिकी प्राप्ति नहीं हुई है, ऐसे पुरुषोंको रज्जुमें सर्पभ्रान्तिकी भाँति यह भ्रमरूपसे ही प्रतीत होता है। जैसे चक्षुरिन्द्रियके दोषरहित होनेपर एक ही चन्द्रमा दृष्टिगोचर होता है, उसी तरह निरन्तर शास्त्रोंके अभ्यास और सत्पुरुषोंके सङ्गसे जब समय पाकर चित्त शुद्ध हो जाता है, तब एकमात्र चेतन परमात्माके स्वरूपका

अनुभव होता है। साधो ! आप आदि-मध्यसे रहित स्व-स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं। देहादि रूपोंमें आपका भेदभाव नहीं रह गया है, आप महान् चेतनस्वरूप हो गये हैं और आपका शोक नष्ट हो गया है, अतः अब आप अपने उसी पदमें प्रविष्ट हुए स्थित रहिये।

(सर्ग १०१)

कुम्भके अन्तर्हित हो जानेपर राजा शिखिध्वजका कुछ कालतक विचार करनेके पश्चात् समाधिस्थ होना, चूडालाका घर जाकर तीन दिनके बाद पुनः लौटना, राजाके शरीरमें प्रवेश करके उन्हें जगाना और राजाके साथ उसका वार्तालाप

कुम्भने कहा—महाराज शिखिध्वज ! जिस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और जैसे विलीन हो जाता है, वह सारा-का-सारा वृत्तान्त मैंने आपसे वर्णन कर दिया। इसे सुनकर, समझकर तथा मनन करके स्पष्टरूपसे प्रत्यक्ष प्राप्त परमपदमें आप स्वेच्छानुसार स्थित रहिये। संकल्पपरम्परासे तथा किसी भी वस्तुकी अभिलाषासे रहित आपको सदा आत्मदृष्टिमें ही स्थित रहना चाहिये; क्योंकि यही दृष्टि परम पावन है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! कुम्भके यों कहनेपर राजा शिखिध्वज हाथमें फूल लेकर कुम्भको प्रणाम करनेके लिये प्रतिवचन बोलना ही चाहते थे कि तबतक कुम्भ अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार कुम्भके अन्तर्हित हो जानेपर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसी विस्मयोत्पादक घटनाका विचार करते हुए चित्रलिखित-से अवाक् रह गये। फिर वे यों सोचने लगे—'अहो ! ब्रह्माकी लीला बड़ी विचित्र है, जो कुम्भके व्याजसे मुझे सदा अभ्युदयस्वरूप ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त हुआ। अहो ! उन देवकुमारने मुझको अत्यन्त ही

सुन्दर एवं युक्तियुक्त उपदेश दिया, जिसके प्रभावसे चिरकालसे मोहनिद्रामें व्याकुल पड़ा हुआ मैं प्रबुद्ध हो गया हूँ। अहो ! कहाँ तो मैं कर्मजालरूपी दलदलमें, जो 'यह करना चाहिये और यह नहीं' इस प्रकारके मिथ्या विभ्रमका चक्ररूप है, विशेषरूपसे फँसा हुआ था, कहाँ मुझे ऐसी साम्राज्यपदवी प्राप्त हो गयी, जो सर्वथा शीतल; शुद्ध, शान्त और अमृतोद्भव सुधाकरकी भाँति आह्लाद-जनक है। इसीलिये अब मैं पूर्ण शान्तिका अनुभव कर रहा हूँ, पूर्णतः तृप्त हो रहा हूँ और केवल आनन्दमें ही स्थित हूँ। मेरे मनमें अब तृणके अग्रभागके बराबर भी इच्छा शेष नहीं रह गयी है। मैं अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो गया हूँ।' यों विचार करते हुए राजा शिखिध्वज, जिनका अन्तःकरण वासनाओंसे शून्य हो गया था, मौन होकर इस प्रकार बैठ गये मानो पत्थरपर खुदी हुई कोई प्रतिमा हो। तत्पश्चात् उस निर्विकल्प एवं निराश्रय मौनावस्थामें अचलरूपसे प्रतिष्ठित होकर वे पर्वतके शिखरकी भाँति स्थित हो गये।

रघुकुलभूषण राम ! इस प्रकार इधर राजा शिखिध्वज तो निर्विकल्प समाधिमें स्थित होनेके कारण काष्ठ और दीवालकी तरह निश्चेष्ट हो गये। उधर अब चूडालाकी बात सुनिये। वह उस कुम्भ-वेषसे अपने स्वामी राजा शिखिध्वजको प्रबुद्ध करके स्वयं अन्तर्हित हो गयी और बड़े वेगसे उछलकर आकाशमें जा पहुँची। वहाँ उसने मायाद्वारा विरचित देवपुत्रकी आकृतिका परित्याग कर दिया और ऐसा सुन्दर स्त्रीरूप धारण कर लिया, जो समझदार पुरुषोंको भी मुग्ध कर देनेवाला था। फिर तो वह आकाशमार्गसे अपने नगरमें जा पहुँची और उसी क्षण अपने अन्तःपुरमें प्रविष्ट हो गयी। तत्पश्चात् लोगोंके सामने प्रकट होकर

राज्य-कार्य करने लगी। तीन दिन बीतनेके बाद वह पुनः आकाशमें जाकर योगबलसे कुम्भ-रूपमें परिणत हो गयी और राजा शिखिध्वजके वनमें जा पहुँची। वहाँ उस वनस्थलीपर उतरकर चूडालाने देखा कि राजा शिखिध्वज उसी स्थानपर निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर ऐसे निश्चल हो गये हैं; जैसे चित्रलिखित वृक्ष। उन्हें देखकर वह बारम्बार इस प्रकार कहने लगी—'अहो ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि यहाँ इन राजाको अपने आत्मामें विश्राम प्राप्त हो गया, जिससे ये सम, शान्त एवं स्वस्थ होकर स्थित हैं। इसलिये मैं इन्हें इस समाधिसे अवश्य जगाऊँगी; क्योंकि अभी इनका देहत्याग करना उचित नहीं है।'

यों सोच-विचारकर चूडाला अपने स्वामीके आगे बारम्बार ऐसा भीषण सिंहनाद करने लगी. जो वनचरोंको भी भयभीत करनेवाला था। किंतु जब पुनः-पुनः उस भयंकर सिंहनादके करनेपर भी पर्वतकी शिलाके समान राजा विचलित नहीं हुए, तब चूडाला उन्हें हाथोंसे हिलाने-डुलाने लगी। परंतु जब झकझोरनेपर भी राजा नहीं जागे, तब कुम्भरूपिणी चूडाला सोचने लगी—'अहो ! ये साधु भगवान् तो अपने स्वरूपमें परिणत हो गये हैं, अब मैं इन्हें किस युक्तिसे जगाऊँ।' ऐसा विचारकर सुन्दरी चूडालाने पतिकी ओर देखा और फिर उनके शरीरका स्पर्श किया। जीवनके हेतुभूत लक्षणोंसे जब उसने जान लिया कि अभी ये जीवित हैं, तब वह कहने लगी कि अभी इनके हृदयमें प्राण विद्यमान है।

श्रीरामने पूछा—ब्रह्मन् ! जिनका चित्त अत्यन्त शान्त हो गया है और जिनकी स्थिति काष्ठ और लोष्टकी-सी हो गयी है, ऐसे ध्यानशाली पुरुषके सत्त्वशेषका ज्ञान कैसे होता है ?

श्रीवसिष्ठजीने कहा—वत्स राम ! जैसे बीजके अंदर पुष्प और फल सूक्ष्मरूपसे वर्तमान रहते हैं, वैसे ही किसी भी ध्यानशाली पुरुषके हृदयमें प्रबोधका कारणभूत सत्त्वशेष—वासनारहित अन्तःकरण सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहता ही है। जैसे समानरूपसे बहनेवाले जलप्रवाहमें तरङ्ग आदिकी उत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही जिस ध्यानीके अन्तःकरणकी गति सम हो गयी है, उसमें रागादि दोषोंका उद्भव नहीं होता। श्रीराम ! जिस शरीरमें न तो चित्त विद्यमान है और न सत्त्व ही, वह शरीर मरणद्वारा वैसे ही पञ्चतत्त्वोंमें विलीन हो जाता है, जैसे गरमीमें बर्फ गलकर अपने असली जलस्वरूपमें परिणत हो जाती है। परंतु राजा शिखिध्वजका वह शरीर यद्यपि चित्तशून्य था तथापि उसमें पर्याप्त गर्मी वर्तमान थी और वह सत्त्वांश अर्थात् वासनारहित अन्तःकरणसे संयुक्त था, इसी कारण पञ्चतत्त्वोंमें विलीन नहीं हुआ था। तब उस श्रेष्ठ सुन्दरी चूडालाने अपने पतिके शरीरकी इस दशाका अवलोकन करके शीघ्र ही विचार किया कि 'यदि मैं इन्हें नहीं जगाती हूँ तो भी कुछ समयके बाद ये स्वयं जाग ही जायँगे; किंतु मैं यहाँ अकेले ही क्यों बैठी रहूँ, अतः इन्हें अवश्य जगाऊँगी।'

यों विचारकर चूडाला अपने इन्द्रियसमूहरूपी शरीरको वहीं छोड़कर स्वामीके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो गयी। वहाँ पहुँचकर उसने सत्त्वसम्पन्न अपने स्वामीकी चेतनाको स्पन्दित कर दिया और फिर लौटकर वह अपने शरीरमें उसी प्रकार प्रवेश कर गयी जैसे चिड़िया अपने घोंसलेमें घुस जाती है। तदनन्तर कुम्भस्वरूपिणी चूडाला वहाँसे उठकर एक पुष्पाच्छादित स्थानमें जा बैठी और सामगान करने लगी। उस सामगानको सुनकर राजाके शरीरमें वर्तमान सत्त्वगुणसम्पन्ना चेतनता उद्बुद्ध हो उठी।

आँख खोलनेपर राजा शिखिध्वजने कुम्भको अपने सामने उपस्थित देखा, जो दिव्य शरीरसे युक्त होकर सामगानमें तत्पर थे तथा मूर्तिमान् दूसरे सामवेद-से जान पड़ते थे। उन्हें देखकर राजाने सोचा—'अहो ! मैं तो धन्य हो गया; जो ये मुनि पुनः अपने-आप यहाँ पधारे।' ऐसा विचारकर उन्होंने कुम्भको पुष्पाञ्जलि समर्पित की और कहा—'भगवन् ! मालूम होता है, मुझे पवित्र करनेके लिये ही आपका पुनः आगमन हुआ है। यदि ऐसी बात नहीं है तो आप ही बतलाइये कि आपके पुनः आगमनमें दूसरा कौन-सा कारण हो सकता है ?'

कुम्भने कहा—महाराज ! मैं शरीरसे तो आपके पाससे चला गया था किंतु मेरा चित्त तो यहाँ आपके साथ ही स्थित था, इसी कारण मैं आपके सामने पुनः उपस्थित हुआ हूँ; क्योंकि मेरी तो ऐसी धारणा है कि इस जगत्में आपके समान मेरा बन्धु, आप्त, सुहृद्, मित्र, सखा, विश्वासपात्र व्यक्ति अथवा अनुयायी दूसरा कोई नहीं है।

शिखिध्वज बोले—अहो ! देवपुत्र ! असङ्ग होते हुए भी जो आप मेरे समागमकी इच्छा रखते हैं, इससे प्रतीत होता है कि आज निश्चय ही मेरे पुण्य सफल हो गये।

कुम्भने कहा—राजन् ! आपको महानन्दस्वरूप परमपदमें विश्रामकी प्राप्ति हो गयी न ? आप इस भेदमय दुःखसे सर्वथा रहित हो गये हैं न ? भोगकी नीरसताका विचार करके आपात-रमणीय संकल्पोंसे आपका प्रेम एकदम निर्मूल हो गया है न ? आपका मन हेय और उपादेयकी अवस्थाको अतिक्रान्त कर गया है न ? वह शान्त, शम-सम्पन्न होनेसे समतायुक्त और प्रारब्धानुसार प्राप्त पदार्थोंमें उद्वेगशून्य होकर ही स्थित रहता है न ?

शिखिध्वज बोले—भगवन्! चिरकालके पश्चात् थोड़े ही समयमें मैं निर्विकार होकर पूर्ण विश्रामको प्राप्त हो गया हूँ। मुझे सम्पूर्ण प्राप्तव्य पदार्थ उपलब्ध हो चुके हैं। अब मैं पूर्णतया तृप्त हो गया हूँ। जिस ब्रह्मका मुझे न तो ज्ञान ही था और न जिसकी प्राप्ति ही हुई थी, उसे मैंने जान लिया और प्राप्त भी कर लिया तथा छोड़ देने योग्य संसारका त्याग भी कर दिया। अब मेरा मन वासनारहित हो गया है और मैंने परमात्मस्वरूप परमतत्त्वका आश्रय भी ले लिया है। अब मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है। अब तो मैं सांसारिक वासनाओंसे शून्य, मोह और भयसे रहित, वीतराग, नित्यज्ञानस्वरूप, सर्वत्र समतापूर्ण, सर्वथा सौम्य, सर्वात्मक, सारी कल्पनाओंसे मुक्त, आकाशमण्डलके समान निर्मल तथा एकरूप होकर स्थित हूँ। (सर्ग १०२-१०३)

——★——

कुम्भ और शिखिध्वजका परस्पर सौहार्द, चूडालाका राजासे आज्ञा लेकर अपने नगरमें आना और उदास-मन होकर पुनः राजाके पास लौटना, राजाके द्वारा उदासीका कारण पूछनेपर चूडालाद्वारा दुर्वासाके शापका कथन और चूडालाका दिनमें कुम्भरूपसे और रातमें स्त्रीरूपसे राजा शिखिध्वजके साथ विचरण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन! वे दोनों कुम्भ और शिखिध्वज तत्त्वज्ञानी तो थे ही, अतः वे परस्पर इस प्रकारकी अध्यात्मविषयकी विचित्र कथाएँ कहते हुए तीन मुहूर्त—छः घड़ीतक उस वनमें बैठे रहे। तत्पश्चात् वे वहाँसे उठकर किसी दूसरे शिखरपर जाकर वहाँके सरोवरपर तथा आनन्ददायक वनमें

विचरण करने लगे। इस प्रकार उस महावनकी उन वनवीथियोंमें वैसा आचरण करते हुए तथा परस्पर वैसी कथाओंको कहते-सुनते हुए उन दोनोंके आठ दिन बीत गये। तब कुम्भने राजासे कहा—'राजन्! आओ अब हमलोग इस पर्वतपर किसी दूसरे वनमें चले।' राजाने कुम्भकी बात मानकर स्वीकार कर लिया। फिर तो वे दोनों वहाँसे चल पड़े और अनेक तरहके वनों, जंगलों, जलाशयोंके तटों, सरोवरों, कुञ्जों, भीषण शिखरों, नदी-प्रदेशों, ग्रामों, नगरों, उपवनों, पर्वतीय गोष्ठों, कुञ्जों, तीर्थस्थानों और आश्रमोंमें घूमते रहे। वे पूर्णतया शान्त तो थे ही, अतः एक ही साथ रहते थे। उनमें स्नेह, सत्त्व और उत्साह एक-सा था। राघव! वे देवताओं और पितरोंकी पूजा भी एक ही साथ करते थे और उनका भोजन भी एक साथ ही होता था। श्रीराम! 'यह अपना घर है और यह नहीं है' ऐसी वैकल्पिक धारणा उन दोनोंके मनका कभी अपहरण नहीं कर पाती थी। वे कभी अपने शरीरपर धूल लपेट लेते, कभी चन्दनका लेपन कर लेते, कभी भस्म रमा लेते, कभी दिव्य वस्त्र धारण कर लेते, कभी उसे पल्लवोंसे आच्छादित कर लेते और कभी पुष्पोंसे सजा लेते। इस प्रकार वे दोनों मित्र साथ-साथ विचरण करते थे।

कुछ ही दिनोंके बाद समचित्तता तथा सत्त्वकी उत्कृष्टताके कारण राजा शिखिध्वज भी कुम्भके ही समान शोभा पाने लगे। तब मानिनी चूडालाने राजा शिखिध्वजको देवकुमारके सदृश उत्तम शोभासे सम्पन्न देखकर विचार किया कि 'अब मैं इस काननमें अपनी बुद्धिसे सोचकर कुछ ऐसे प्रपञ्चकी रचना करूँ, जिससे दूसरोंको मान देनेवाले ये मेरे स्वामी राजा शिखिध्वज मुझमें रतिसुखके इच्छुक हो जायँ।' यों सोच-विचारकर कानन-कुञ्जमें बैठी हुई कुम्भवेषधारिणी चूडाला अपने पतिसे बोली—

कुम्भने कहा—'राजन् ! मैं स्वर्ग जा रहा हूँ और सायंकाल होते-होते वहाँसे निश्चय ही लौट आऊँगा; क्योंकि आपका सङ्ग मुझे स्वर्गसे भी बढ़कर सुखप्रद है।' अच्छा, 'आप शीघ्र ही लौटियेगा।' राजाके ऐसा कहनेपर कुम्भ उस वनप्रान्तसे उड़कर शरत्कालीन मेघके सदृश आकाशमें जा पहुँचे। वहाँ आकाशमार्गसे जाते हुए कुम्भने राजाके ऊपर पुष्पाञ्जलि छोड़ दी। राजा शिखिध्वज भी जाते हुए कुम्भकी ओर तबतक टकटकी लगाये देखते ही रहे, जबतक वे उनकी आँखोंसे ओझल नहीं हो गये।

उधर आकाशमें राजा शिखिध्वजकी आँखोंसे ओझल होते ही सुन्दरी चूडालाने कुम्भ-शरीरका परित्याग कर दिया और वह पुनः अपने पूर्वरूपमें आ गयी। फिर आकाशमार्गसे चलकर वह स्वर्गके समान रमणीय अपने नगरमें जा पहुँची और अदृश्यरूपसे अपने अन्तःपुरमें, जो सुन्दरी स्त्रियोंसे खचाखच भरा था, प्रवेश कर गयी। वहाँ झटपट सारा राज्यकार्य सँभालकर वह पुनः राजा शिखिध्वजके समक्ष आ गयी। पर आज उसके चेहरेपर उदासी छायी थी। यों उदास-मन कुम्भको सामने देखकर राजा शिखिध्वज उठकर खड़े हो गये। उनका भी चित्त उदास हो गया, फिर वे आदरपूर्वक यों कहने लगे—'देवपुत्र ! आपको नमस्कार हैं। आप तो उदास-से दीख पड़ते हैं। आप कुम्भ तो हैं न ? इस उदासीको छोड़िये और इस आसनपर विराजिये। मित्रवर ! जिन्हें वेद्य वस्तुका ज्ञान प्राप्त हो चुका है तथा जो अपने स्वरूपमें स्थित हो गये हैं, ऐसे संत-महात्मालोग हर्ष-विषादजनित स्थितिका उसी प्रकार आश्रय नहीं ग्रहण करते, जैसे कमलपत्र जलका।'

तब कुम्भने कहा—'राजन् ! जैसे जबतक तिल है तबतक तेल रहता है', उसी तरह जबतक देह है, तबतक उसकी अच्छी-बुरी दशा भी होती है। परंतु योगसे चित्तकी जो समता होती है, वही देहकी अच्छी-बुरी दशाओंद्वारा प्राप्त

दुःखसे रहित होना है। तत्त्वज्ञानी लोग तो, जबतक प्राप्त हुए अन्तिम देहका पतन नहीं हो जाता, बुद्धि आदिकी समता तथा हाथ-पैर आदिके संचालनसे तबतक ईश्वरीय विधानके अनुसार समय बिताते रहते हैं।'

शिखिध्वज बोले—महाभाग ! आप तो तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं। देवता होते हुए भी आपको ऐसी उदासी किस कारणसे प्राप्त हुई—यह बतलानेकी कृपा कीजिये।

तब कुम्भने कहा—भद्र ! जब मैं यहाँसे चला, तब आपको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके आकाशको लाँघता हुआ स्वर्गमें जा पहुँचा। वहाँ पिताजीके साथ महेन्द्रके सभाभवनमें क्रमानुसार बैठा था। जब सभा-विसर्जनका समय आया और पिताजीने मुझे जानेकी आज्ञा दी, तब मैं उठकर यहाँ आनेके लिये स्वर्गसे चल पड़ा और नभोमण्डलमें आ पहुँचा। आगे बढ़नेपर मैंने देखा कि सजल जलधरोंके मध्यसे होकर मुनिवर दुर्वासा बड़े वेगसे इधर ही आ रहे हैं। वे भूतलपर स्थित गङ्गाजीकी ओर बड़ी तेजीसे दौड़े जा रहे थे। तब मैंने भी आकाशमार्गसे ही आगे जाकर उन मुनिश्रेष्ठको अभिवादन किया और कहा—'मुने ! नीले मेघके सदृश वस्त्र धारण करनेके कारण आप अभिसारिका नारीकी तरह लग रहे हैं।' दूसरोंको मान देनेवाले महाराज ! यह सुनकर दुर्वासाजी मुझे शाप देते हुए बोले—'जाओ, इस दुर्वचनके कारण आजसे तुम प्रत्येक रात्रिमें स्तन और केश आदि स्त्री-चिह्नोंसे युक्त होकर हाव-भाव आदि विलासोंवाली कमनीया रमणीके रूपमें बदल जाया करोगे।' वृद्ध ब्राह्मण दुर्वासाके मुखसे निकले हुए उस अशुभ वचनको सुनकर, जबतक मैं कुछ थोड़ा विचार करने लगा, तबतक वे मुनि अन्तर्धान हो गये। इसी कारणसे मेरा मन उदास हो गया है और मैं सीधे आकाशतलसे

यहाँ चला आया हूँ। सज्जनशिरोमणे ! इस प्रकार मैंने अपना सारा वृत्तान्त आपको सुना दिया। अब मैं रात्रिमें स्त्री हो जाऊँगा। भला, रात्रिमें मैं इस स्त्रीत्वका निर्वाह कैसे कर सकूँगा। अहो ! संसारमें होनहारकी बड़ी विलक्षण गति है। हाय ! रातमें जब मेरा स्त्रीरूप हो जायगा, उस समय मैं लज्जापरवश होकर गुरुजनों, देवताओं और ब्राह्मणोंके सामने निर्बाधरूपसे कैसे रह सकूँगा ?'

शिखिध्वज बोले—देवपुत्र ! जगत्‌में जो कुछ भी दुःख अथवा सुख प्राप्त होते हैं, वे सभी प्रारब्धानुसार शरीरके लिये ही होते हैं। उनमेंसे किसीका भी आत्मापर प्रभाव नहीं पड़ता। मुने ! आप तो शास्त्रको भूषणकी तरह धारण करनेवाले हैं, इसलिये किसी भी कार्यफलके विषयमें विचार करना आपके लिये उचित नहीं है। फिर, यदि आप-जैसे विवेकी पुरुष भी यों विचार करने लगेंगे तो अन्य अविवेकी जनोंके खेद-नाशका क्या उपाय होगा ? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि खेदका विषय उपस्थित होनेपर कुछ खेदोचित वचन कहना चाहिये—इसी अभिप्रायसे आपने ऐसा कहा है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—राघव ! तदनन्तर जब चन्द्रोदयका समय आया, तब उन दोनों मित्रोंने उठकर संध्या-वन्दन किया और फिर जप-कर्म समाप्त करके वे लताओंके एक समूहमें जा बैठे। वहाँ जब कुम्भ धीरे-धीरे स्त्रीरूपमें परिवर्तित होने लगे, तब वे सामने बैठे हुए राजा शिखिध्वजसे गद्‌गद वाणीमें बोले—'राजन् ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपके सामने मैं लज्जाके साथ-ही-साथ स्त्रीभावको प्राप्त होता जा रहा हूँ।'

दो घड़ीतक विचार करनेके पश्चात् राजा शिखिध्वज इस प्रकार कहने लगे—'अहो ! दुःखकी बात है। ये कुम्भमुनि, जो महान् सत्त्वसम्पन्न थे, वे ही अब सुन्दरी स्त्री बन गये। साधु-शिरोमणे ! आप तो तत्त्वज्ञानी हैं, दैवकी गति भी आपसे छिपी

नहीं है, अतः इस अवश्यम्भावी घटनाके विषयमें विचार मत कीजिये। ये जो अवश्यम्भाविनी सुख-दुःखात्मक दशाएँ हैं, सभी तत्त्वज्ञानियोंके केवल शरीरपर ही प्रभाव डाल पाती हैं, उनके अन्तःकरणपर नहीं, परंतु ये ही अविवेकियोंके केवल शरीरपर ही नहीं, अन्तःकरणतक पहुँच जाती हैं।'

कुम्भने कहा—राजन्! ठीक है, ऐसा ही हो। अब मैं रात्रिके समय अपने स्त्रीभावको स्वीकार कर लेता हूँ और इसके लिये चिन्ता भी नहीं करूँगा; भला, दैवका उल्लङ्घन कौन कर सकता है।

तदनन्तर जब प्रातःकाल हुआ, तब कुम्भने उस युवती स्त्रीके स्वरूपका परित्याग कर दिया और अपना वही कुम्भरूप धारण कर लिया। इस प्रकार वह राजरानी सुन्दरी चूडाला अपने पतिके पास पहले कुम्भरूपसे उपस्थित हुई, तत्पश्चात् स्त्रीरूप धारण करके आयी। वह रात्रिमें कुमारीधर्मसे युक्त होकर और दिनमें कुम्भरूप धारण करके अपने मित्र एवं स्वामी शिखिध्वजके साथ वन-प्रान्तोंमें विचरण करती थी। योगबलसे उसका गमनागमन कहीं रुकता नहीं था। इस प्रकार वह नारी चूडाला पुष्पमालाओं एवं हारोंसे विभूषित होकर अपने मित्र एवं प्रियतम पतिके साथ कैलास, मन्दर, महेन्द्र, सुमेरु और सह्यगिरिके शिखरोंपर स्वेच्छानुकूल विचरण करती रही। (सर्ग १०४-१०५)

महेन्द्र पर्वतपर अग्निके साक्ष्यमें मदनिका (चूडाला) और शिखिध्वजका विवाह, एक सुन्दर कन्दरामें पुष्पशय्यापर दोनोंका समागम, शिखिध्वजकी परीक्षाके लिये चूडालाद्वारा मायाके बलसे इन्द्रका प्राकट्य, इन्द्रका राजासे स्वर्ग चलनेका अनुरोध, राजाके अस्वीकार करनेपर परिवारसहित इन्द्रका अन्तर्धान होना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम! तदनन्तर कुछ ही दिनोंके बीतनेके बाद कुम्भरूपधारिणी सती चूडाला अपने स्वामी राजा शिखिध्वजसे इस प्रकार बोली—'कमलपत्रसदृश नेत्रोंवाले महाराज! मेरी यह बात सुनिये। मैं प्रतिदिन रात्रिके समय स्त्री ही बनकर रहता हूँ, इसलिये मैं अपने इस प्रकारके स्त्रीधर्मको सफल बनाना चाहता हूँ। इसके लिये विवाहद्वारा अपनेको किसी योग्य पतिके हाथों सौंप देनेका मेरा विचार है। इस विषयमें त्रिलोकीमें केवल आप ही मुझे पतिरूपसे पसंद आ रहे हैं; अतः विवाह-विधिसे आप सर्वदा रात्रिके समय पत्नीरूपमें मुझे स्वीकार कीजिये। राजन्! चारों ओरसे सारी वस्तुओंमें इच्छा, अनिच्छा तथा तज्जनित फलका त्याग करके हमलोग इच्छा-अनिच्छासे रहित हो गये हैं; अतः इस अभीष्ट कार्यको आप अवश्य सम्पन्न करें।

तब शिखिध्वज बोले—सखे! इस विवाह-कार्यके करनेसे मुझे शुभ अथवा अशुभ—किसी प्रकारके फलकी सम्भावना नहीं दीख रही है, अतः आपको जैसा रुचे, वैसा ही कीजिये।

कुम्भने कहा—महीपाल! यदि ऐसी बात है तो आज यह श्रावणमासकी पूर्णिमा है, अतः आज ही शुभ लग्न है, क्योंकि कल ही मैंने विवाहसम्बन्धी सारी गणना कर ली थी। महाबाहो! आज रातमें सम्पूर्ण कलाओंसे परिपूर्ण निर्मल चन्द्रमाके उदय होनेपर हम दोनोंका विवाह होगा। राजन्! उठिये और हम दोनों

वनके भीतरसे अपने विवाहके लिये चन्दन और पुष्प आदि सामग्री एकत्र करें।

यों कहकर कुम्भ उठे और राजा शिखिध्वजके साथ-साथ पुष्पोंको चुनने तथा सामग्रियोंके सञ्चय करनेमें जुट गये। इस प्रकार एक सुन्दर गुफामें सारी विवाह-सामग्री जुटाकर वे दोनों प्रेमी मित्र मन्दाकिनी नदीमें स्नान करनेके लिये गये। वहाँ नहा-धोकर उन लोगोंने देवताओं, पितरों और ऋषियोंका पूजन किया; क्योंकि जैसे उन्हें क्रियाजनित फलकी इच्छा नहीं थी, उसी प्रकार शास्त्रविहित क्रियाका त्याग भी उन्हें पसंद नहीं था। तदनन्तर कल्पवृक्षके उज्ज्वल वर्णके वल्कल वस्त्र पहनकर तथा फल खाकर वे दोनों क्रमशः विवाह-स्थानमें आये। फिर सूर्यास्त होनेपर उन्होंने संध्या-वन्दनकी विधि पूरी की और मन्त्र-जप तथा अघमर्षण आदि भी किया। इतनेमें ही कुम्भ स्त्रीरूपमें परिणत हो गये। तब वे सोचने लगे कि 'यह वधू तो मैं बन गया। अब मुझे अपना शरीर वरको दे देना चाहिये, क्योंकि समयोचित कृत्यका पालन अवश्य करना चाहिये। यह मैं वधू हूँ और आप मेरे मनोनीत वर सामने उपस्थित हैं। यह आपके परिणयका समय है, अतः आइये और मुझे ग्रहण कीजिये।' यों विचारकर वह वरके समीप, जो सामने वनवेदीके निकट स्थित तथा उगते हुए सूर्यके समान तेजस्वी थे, गयी और यों बोली—'मानद ! मैं आपकी भार्या हूँ। मेरा नाम मदनिका है। मैं आपके चरणोंमें यह स्नेहपूर्वक प्रणाम करती हूँ। नाथ ! अब आप शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अग्नि प्रज्वलित करके मेरा पाणिग्रहण कीजिये।'

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! तदनन्तर उन दोनोंने वेदीके समीप खड़े हुए खम्भोंको फूलसे लदी हुई लताओंसे सजाया। फिर उस वेदीके मध्यभागमें अग्निकी स्थापना करके उसे

चन्दनकी लकड़ियोंसे प्रज्वलित किया। जब लपटें निकलने लगीं, तब दक्षिण क्रमसे उस अग्निकी प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् उस अग्निके सामने पल्लवके आसनपर वे पूर्वाभिमुख हो दोनों आसीन हो गये। उस समय उन दोनों वर-वधूकी अद्भुत शोभा हो रही थी। फिर शिखिध्वजने उठकर स्वयं ही उस कान्ता मदनिकाका पाणिग्रहण किया। उस समय उस वनमें उन दोनोंकी परस्पर शिव-पार्वतीके समान शोभा हो रही थी। फिर उस मङ्गलस्वरूप दम्पतीने उस अग्निकी प्रदक्षिणा की। उन दोनोंने परस्पर एक-दूसरेको अपना हृदय, जो प्रेमके लिये लोलुप तथा सर्वोत्तम ज्ञानसे पूर्ण था, समर्पित कर दिया। उन्होंने अग्निकी तीन बार प्रदक्षिणा की और उसमें लाजाहोम किया। इस प्रकार समान रूपसे संतुष्ट हुए वर-वधूने एक-दूसरेद्वारा पकड़े गये अपने हाथको छुड़ा लिया। तदनन्तर उन दोनों प्रेमियोंने वहाँसे उठकर एक सुन्दर कन्दरामें जिसका उन्होंने पहलेसे ही स्वयं निर्माण कर रखा था और जिसमें चमकीले दीपक जल रहे थे, प्रवेश किया। और वे दोनों पुष्पशय्यापर बैठ गये। फिर तो, परस्पर प्रेमभरे तरह-तरहके मनोहर वाग्विलासोंसे, समयोचित आलिङ्गन आदि कृत्योंसे प्रेमयुक्त व्यवहारोंसे तथा नये-नये सुखोपभोगसे उस उत्तम दम्पतीकी वह लम्बी रात एक मुहूर्तके समान बीत गयी।

रघुकुलभूषण राम! इस प्रकार वे दोनों कुम्भ और शिखिध्वज उस महेन्द्राचलकी गुफामें स्वयं विवाहित होकर देवतुल्य परम प्रेमी दम्पती बन गये। दिनमें तो वे परम प्रेमी मित्र बन जाते थे और रातमें प्रिय पति-पत्नी हो जाते थे। प्रभा और दीपककी तरह वे परस्पर घुले-मिले रहते थे, अलग तो कभी होते ही नहीं थे। इस प्रकार जब धीरे-धीरे कुछ मास व्यतीत हो गये, तब देवपुत्रका स्वरूप धारण करनेवाली चूडालाने विचार

किया कि अब मैं नाना प्रकारके उत्तम-उत्तम उपभोगोंद्वारा राजा शिखिध्वजकी परीक्षा करूँगी, जिससे इनका चित्त कभी भी भोगोंमें अनुरक्त नहीं होगा। ऐसा सोचकर चूडालाने अपनी मायाके बलसे उस वनस्थलीमें देवगणों तथा अप्सराओंके साथ पधारे हुए इन्द्रको दिखलाया। परिवारसहित इन्द्रको अपने निकट आया हुआ देखकर वनवासी राजा शिखिध्वज उनकी विधिवत् पूजा करके पूछने लगे।

शिखिध्वज बोले—देवराज! आपने इतनी दूरसे यहाँ आनेका कष्ट क्यों उठाया? आप जिस प्रयोजनसे यहाँ पधारे हैं, उसे बतलानेकी कृपा कीजिये।

इन्द्रने कहा—राजन्! आपके गुणाधिक्यरूपी सूत्रने हमारे हृदयको बाँध रखा है, जिससे खिंचकर हम आकाशसे यहाँ आ गये हैं। महाराज! अब उठिये और स्वर्ग चलिये; क्योंकि वहाँ यूथ-के-यूथ देवता तथा देवाङ्गनाएँ आपके गुणोंको सुनकर विस्मय-विमुग्ध हो रहे हैं और वे सब-के-सब आपके शुभागमनकी प्रतीक्षामें बैठे हैं। इसलिये आप पादुका, गुटिका, खड्ग और पारद आदि रसोंको भी लेकर सिद्धमार्गसे स्वर्गलोकमें चलना स्वीकार कीजिये। राजर्षे! आप जीवन्मुक्त तो हैं ही, अतः देवलोकमें पधारकर आप अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग करें, इसी कारण मैं आपके पास आया हूँ। साधो! आपके समान जो संत-महात्मा हैं, वे न तो प्राप्त हुई लक्ष्मीका तिरस्कारद्वारा अपमान करते हैं और न अप्राप्तकी कामना ही करते हैं। महात्मन्! जैसे भगवान् नारायणके शुभागमनसे त्रिलोकी पवित्र हो जाती है, वैसे ही आप बिना किसी विघ्न-बाधाके स्वर्ग पधारें और वहाँ सुखपूर्वक विहार करें; जिससे वह स्वर्ग पवित्र हो जाय।

शिखिध्वज बोले—देवेन्द्र! मैं तो सभी देशोंको स्वर्ग-सा ही मानता हूँ, क्योंकि मैं जिस परमात्माको स्वर्ग मानता हूँ, उसकी

सत्ता सदा सर्वत्र वर्तमान है, अतः मेरे लिये कहींपर भी एकदेशी स्वर्ग नहीं है। प्रभो ! मैं सभी जगह संतुष्ट रहता हूँ और सभी स्थानोंमें विचरण करता हूँ। मेरे मनमें किसी प्रकारकी इच्छा तो है नहीं, अतः मैं सर्वत्र आनन्दसे परिपूर्ण रहता हूँ। इन्द्र ! इन्हीं सब कारणोंसे एक स्थानमें स्थित रहनेवाले किसी ऐसे एकदेशी स्वर्गमें जानेकी तो मैं इच्छा ही नहीं करता। इसलिये मैं आपकी आज्ञाका पालन नहीं कर सकूँगा।

इन्द्रने कहा—साधुशिरोमणे ! जिन्हें ज्ञातव्य वस्तुका ज्ञान प्राप्त हो गया है तथा जिनकी बुद्धि परिपूर्ण हो गयी है, उनके लिये भोगोंका उपभोग करना और न करना बराबर है; अतः आपके लिये भोगोंका सेवन करना उचित है। देवराज इन्द्रके यों कहनेपर भी जब राजा मौन ही रहे, तब इन्द्रने पुनः कहा—'राजन् ! जब आपकी ऐसी ही धारणा है, तब मैं ही यहाँसे चला जाता हूँ।' यों कहकर 'राजन् ! आपका कल्याण हो' यह आशीर्वाद देते हुए इन्द्र वहीं अन्तर्धान हो गये। देवराजके अदृश्य होते ही उनके साथका देवसमूह भी क्षणभरमें अदृश्य हो गया।

(सर्ग १०६-१०७)

राजा शिखिध्वजके क्रोधकी परीक्षा करनेके लिये चूडालाका मायाद्वारा राजाको जार-समागम दिखाना और अन्तमें राजाके विकारयुक्त न होनेपर अपना असली रूप प्रकट करना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम ! इन्द्रदर्शनकी मायाका उपसंहार करके चूडाला मन-ही-मन विचार करने लगी—'बड़े सौभाग्यकी बात है, जो विषय-भोगोंकी लालसा इन नरेशके मनको आकृष्ट करनेमें समर्थ न हो सकी। इन्द्रके आनेपर भी ये

निर्विकार शान्त ही रहे। इनके शरीरके अवयवोंकी स्थिति पूर्ववत् समान रही तथा बिना किसी प्रकारके क्षोभ एवं अवहेलनाके इन्होंने इन्द्रके साथ उचित व्यवहार भी किया। अतः अब मैं पुनः एक ऐसे मायाप्रपञ्चकी रचना करूँगी, जिसमें राग-द्वेषकी प्रधानता रहेगी और जो बुद्धिका अपहरण करनेवाला होगा। फिर उसके द्वारा आदरपूर्वक इनकी परीक्षा करूँगी।' ऐसा निश्चय करके रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर उसने उस वनमें सुन्दरी मदनिकाका रूप धारण कर लिया। उस समय जब राजा शिखिध्वज नदीके तटपर संध्या-वन्दन तथा जपकर्ममें तत्पर होकर ध्यानस्थ थे और शीतल मन्द-सुगन्ध वायु बह रही थी, तब मदनिका काम-मदसे विह्वल हुई-सी संतानक वृक्षोंके एक लता-कुञ्जमें प्रविष्ट हुई। वह कुञ्ज सघन पुष्पगुच्छोंसे सुशोभित था तथा वन-देवियोंके शुद्ध अन्तःपुर-सा प्रतीत होता था। वहाँ पुष्पहारोंसे सजी हुई मदनिकाने अपने संकल्पसे एक पुष्पशय्या तैयार की और उसपर मायानिर्मित एक सुन्दर जार पुरुषको लेकर उसके गलेसे लिपटकर लेट गयी।

उधर जपकर्म समाप्त होनेपर जब राजा शिखिध्वज उस स्थानसे उठे और एक कुञ्जसे दूसरे कुञ्जमें मदनिकाका अन्वेषण करने लगे, तब उन्हें उस लतागृहमें मदनिका दीख पड़ी। उसके गलेसे एक मनोहर जार पुरुष लिपटा हुआ था। उस पुरुषके कंधे लम्बे केशोंसे आच्छादित थे और शरीरमें चन्दनका अनुलेप लगा हुआ था। उसके सिरकी सजावट शय्यापर इधर-उधरके परिवर्तन एवं परस्परके मर्दनसे अस्त-व्यस्त हो गयी थी। वह मदनिकाकी भुजाको, जिसकी कान्ति सुवर्णकी-सी थी तथा जो मोड़नेके कारण दो भुजा-सी लग रही थी, तकिया बनाकर उसपर अपना

कान, नेत्रप्रान्त, कपोल और केश रखकर लेटा हुआ था। तदनन्तर राजाने पुनः देखा—उन दोनों स्त्री-पुरुषोंके मुख परस्पर एक-दूसरेसे सटे हुए हैं और उनपर मुसकराहट खेल रही है। शयन करते समय उनके पुष्पहार हिल रहे हैं। वे कामवेगसे आतुर और व्याकुल हैं। परस्पर आलिङ्गनके बहाने वे एक-दूसरेको अपना प्रेम समर्पित कर रहे हैं। वे एक-दूसरेके उन्मुख, समान आनन्दसे परिपूर्ण तथा प्रबल काममदसे भरपूर हो गये हैं। यह सब देखकर भी राजा शिखिध्वजके मनमें जरा-सा भी क्रोध-विकार उत्पन्न नहीं हुआ, उलटे वे परम संतुष्ट हुए और कहने लगे—'अहो ! ये दोनों व्यभिचारी कैसे आनन्दमग्न हैं।' सहसा राजाको आया हुआ देखकर जब वे दोनों डर गये तब राजाने कहा—'तात ! भय मत करो। तुम दोनों स्वेच्छानुसार सुखपूर्वक जैसे सोये हो, वैसे ही सोये रहो। मैं इसमें विघ्न नहीं डालूँगा।' यों कहकर राजा वहाँसे चले गये।

तदनन्तर दो ही घड़ीके बाद चूडाला उस प्रपञ्चका उपसंहार करके लतागृहसे बाहर निकली। उस समय उसका शरीर प्रियतमके साथ सम्भोग करनेके कारण प्रफुल्लित दीख रहा था। बाहर आकर उसने देखा कि राजा शिखिध्वज एकान्तमें एक सुन्दर शिलापर बैठे हैं। उनकी समाधि लग गयी है, जिससे उनके नेत्र थोड़े खुले हुए हैं। तब सुन्दरी मदनिका राजाके निकट गयी और क्षणभरतक चुपचाप खड़ी रही। उस समय लज्जाके कारण उसका मुख नीचे झुक गया था और उसकी कान्ति मलिन हो गयी थी तथा मन खिन्न था। क्षणभरके बाद जब राजा शिखिध्वज ध्यानसे विरत हुए, तब मदनिकाको पास ही खड़ी देखा। उसे देखकर उनकी बुद्धिमें जरा-सा भी क्षोभ नहीं हुआ। वे उससे अत्यन्त मधुर वाणीमें कहने लगे—'सुन्दरि ! क्या

किसीने शीघ्र ही तुम्हारे सुखमें विघ्न डाल दिया ? तुमने सुखका उपभोग तो किया है न ? (इसमें लज्जित होनेकी क्या बात है; क्योंकि) संसारमें जितने प्राणी हैं, वे सभी सुखके लिये ही तो प्रयत्न करते हैं। अतः तुम जाओ और पुनः अपनी प्रणयगर्भित चेष्टाओंसे अपने उस प्रियतमको संतुष्ट करो। मानिनि ! तुम्हारे इस कार्यसे मेरे मनमें किसी प्रकारकी उद्विग्नता नहीं है। यहाँ मेरे और कुम्भमें तो रागका लेशमात्र भी नहीं रह गया है, अतः हम दोनों तो वीतराग हो चुके हैं। तुम तो हमलोगोंसे भिन्न एक तीसरी नारी हो, जो महर्षि दुर्वासाके शापसे उत्पन्न हुई हो; अतः तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा ही करो।'

तब मदनिका बोली—महाभाग ! आपका कथन बिलकुल सत्य है; परंतु मैं क्या करूँ, स्त्रियोंका स्वभाव ही बड़ा चञ्चल होता है। उनमें पुरुषोंकी अपेक्षा कामका वेग भी अठगुना बताया जाता है, अतः आप मुझपर क्रोध न करें। महाराज ! जब आप संध्यावन्दन तथा जपकर्ममें रत हो गये, तब रात्रिके समय इस गहन काननमें उस कामी पुरुषने मुझे पकड़ लिया। उस समय मैं दीन अबला कर ही क्या सकती थी। राजन् ! स्त्रियोंका ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे अपने कामवेगको रोक नहीं सकतीं। अतः प्राणनाथ ! एक तो मैं अबला नारी, दूसरे नवयुवती और मूढ़ हूँ, इसी कारण मुझसे यह महान् अपराध हो गया। अब आप मुझे क्षमा करें; क्योंकि क्षमा करना साधु पुरुषोंका स्वभाव ही होता है।

शिखिध्वजने कहा—बाले ! तुम्हारे इस कृत्यसे मेरे अन्तःकरणमें क्रोध तो तनिक-सा भी नहीं है, परंतु मैं अब तुम्हें अपनी वधूके रूपमें केवल इस कारणसे स्वीकार करना नहीं चाहता कि साधुपुरुष इस कर्मकी घोर निन्दा करेंगे। इसलिये अङ्गने ! अब हम दोनों पहलेकी तरह मित्रभावसे वीतराग होकर

वनप्रान्तोंमें नित्य साथ-साथ ही सुखपूर्वक विचरण करेंगे।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन ! इस प्रकार जब राजा शिखिध्वज समत्वभावमें स्थित हो गये, तब उन्हें राग-द्वेषकी भावनाओंसे निर्मुक्त देखकर चूडालाका मन प्रसन्न हो गया और वह मन-ही-मन विचार करने लगी—'अहो ! ये राजा शिखिध्वज अब सर्वोत्कृष्ट समताको प्राप्त हो गये हैं। रागसे शून्य हो जानेके कारण अब इनमें क्रोधका लेशमात्र भी अवशिष्ट नहीं है। अब ये सचमुच जीवन्मुक्त हो चुके हैं। तभी तो जिन्हें स्वयं इन्द्र प्रदान कर रहे थे, वे उत्तमोत्तम भोग, इनको विचलित नहीं कर सके तथा बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ, सुख, दुःख, आपत्ति और सम्पत्ति भी इन्हें अपनी ओर आकृष्ट करनेमें समर्थ न हो सकीं। एक जीवन्मुक्तमें जितनी निर्दोष महान् ऋद्धियाँ बतायी जाती हैं, वे सब-की-सब इस समय अकेले इन्हींका आश्रय ले रही हैं, अतः ये दूसरे नारायणकी तरह जान पड़ते हैं। इसलिये अब मैं इस कुम्भरूपका परित्याग करके चूडाला ही बन जाऊँगी और इन्हें अपने सारे वृत्तान्तका स्मरण दिलाऊँगी।' यों विचारकर चूडालाने तुरंत ही मदनिकाके शरीरको छोड़कर वहीं अपनेको चूडालाके रूपमें प्रकट कर दिया। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो चूडाला मदनिकाके उसी शरीरसे निकली है। तत्पश्चात् वह योगधारणासे युक्त होकर राजाके सामने सुशोभित हुई। राजाने प्रेमपरवशताके कारण निर्दोष अङ्गोंवाली उस कमनीया मदनिकाको ही अपनी प्रियतमा भार्या चूडालाके रूपमें स्थित देखा। उस समय चूडाला भूमितलसे प्रकट हुई लक्ष्मी (सीता) के समान सुशोभित हो रही थी तथा रत्नमञ्जूषासे निकली हुई रत्नप्रभाकी भाँति उद्दीप्त हो रही थी। इस रूपमें राजा शिखिध्वजने अपनी प्राणप्रियाको सामने उपस्थित देखा। (सर्ग १०८)

═══ ★ ═══

ध्यानसे सब कुछ जानकर राजा शिखिध्वजका आश्चर्य-चकित होना और प्रशंसापूर्वक चूडालाका आलिङ्गन करना तथा उसके साथ रात बिताना, प्रातःकाल संकल्पजनित सेनाके साथ दोनोंका नगरमें आना और दस हजार वर्षोंतक राज्य करके विदेहमुक्त होना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुकुलभूषण राम! तदनन्तर अपनी प्यारी पत्नी चूडालाको देखकर आश्चर्यके कारण राजा शिखिध्वजके नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। तब वे आश्चर्ययुक्त वाणीसे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! तुम अपने शरीरसे, व्यवहारसे, मन्द-मुसुकानसे, अनुनय-विनयसे तथा पत्नीसम्बन्धी विलाससे ऐसी उपलक्षित हो रही हो, मानो मेरी भार्या चूडालाकी ही प्रतिमूर्ति हो।'

चूडालाने कहा—प्रभो! हाँ, ऐसा ही समझिये, निःसंदेह मैं चूडाला ही हूँ। आज मैंने अपने पहलेके स्वाभाविक शरीरसे साक्षात् आपको प्राप्त किया है। इस वनमें मैंने जो कुम्भ आदिके देहनिर्माणद्वारा मायाप्रपञ्च प्रकट किया था, वह तो केवल आपको प्रबुद्ध करनेके लिये ही था। महाराज! जब आप मोहवश राज्यका परित्याग करके तपस्याके लिये वनमें चले आये, तभीसे मैं आपको ज्ञानसम्पन्न बनानेके लिये प्रयत्न कर रही थी। भूपते! इस कुम्भवेषसे मैंने ही आपको प्रबुद्ध किया है। मैंने मायाद्वारा जो कुम्भ, मदनिका आदिके शरीरका निर्माण किये थे, उसका एकमात्र प्रयोजन आपको प्रबुद्ध करना ही था। वास्तवमें कुम्भ आदि कुछ भी सत्य नहीं है। राजन्! (यदि मेरी बातोंपर विश्वास न आता हो तो) अब तो आप जाननेयोग्य परमात्माको जान चुके हैं, अतः ध्यान लगानेसे आप यह सारा दृश्य अविकल

रूपसे देख सकेंगे। इसलिये तत्त्वज्ञ! अब शीघ्र ही ध्यान लगाकर देखिये।

चूडालाके ऐसा कहनेपर राजा आसन लगाकर बैठ गये और ध्यानद्वारा उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त अच्छी तरहसे जान लिया। मुहूर्तमात्रके ध्यानसे ही राजाने राज्य-परित्यागसे लेकर चूडालाके साक्षात्कारपर्यन्त अपने विषयमें जितनी घटनाएँ घटी थीं, उन सबको प्रत्यक्षरूपसे देख लिया। तत्पश्चात् समाधि भंग होनेपर हर्षातिरेकसे राजाके नेत्रकमल विकसित हो उठे, भुजाएँ रोमाञ्चके कारण उज्ज्वल हो गयीं। उन्होंने तुरंत ही दोनों ही भुजाओंको फैलाकर अपनी प्रियतमा पत्नी चूडालाका गाढ़ आलिङ्गन किया। उस समय स्नेह घनीभूत होकर टपक रहा था, आँखोंसे प्रेमाश्रु झर रहे थे और प्रेम स्फुरित हो रहा था। तदनन्तर शिखिध्वजने कहा—'प्रिये! तुम बालचन्द्रमाके सदृश सुन्दरी हो, फिर भी तुमने अपने पतिके लिये चिरकालतक कितना दारुण कष्ट उठाया है। मैं इस दुस्तर भवकूपमें डूब रहा था, तुमने अपनी जिस सत्त्वमयी बुद्धिके आश्रयसे मेरा उससे उद्धार किया है, तुम्हारी उस बुद्धिकी उपमा भला किससे दी जा सकती है? वह अनुपमेय है। सुन्दरि! अलौकिक सौन्दर्यवाली नारियोंमें धी, श्री, कान्ति, क्षमा, मैत्री और करुणा आदि उत्तम रूपवती मानी जाती हैं, परंतु तुम तो उन सभीमें मुख्य प्रतीत हो रही हो। तुमने घोर प्रयत्न करके मुझे ज्ञानसम्पन्न बनाया है। इस उपकारके बदलेमें मैं ऐसा कौन-सा कार्य करूँ जिससे तुम्हारा मन प्रसन्न हो। प्रिये! जो कुलीन स्त्रियाँ होती हैं, वे उद्योगपरायण होकर अनादि कालसे चले आते हुए अत्यन्त गहनसे भी गहन मोहरूपी सागरमें पड़े अपने पतिका उद्धार कर ही लेती हैं। यहाँतक कि कुलाङ्गनाएँ अपने पतिके लिये सखा, भ्राता, सुहृद्, भृत्य, शिक्षक, मित्र, धन, सुख, शास्त्र, घर, दास आदि सब कुछ

बन जाती हैं। अतः जिनमें इहलोक तथा परलोक—दोनोंका सम्पूर्ण सुख प्रतिष्ठित है, उन कुलाङ्गनाओंका सभी प्रयत्नोंद्वारा सर्वदा सम्यक्-रूपसे आदर-सत्कार करना चाहिये। रूप, सौजन्य और उत्तमोत्तम गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित प्रिये ! तुम पतिव्रता सती हो। तुम्हारी सारी इच्छाएँ शान्त हो गयी हैं और तुम संसार-सागरसे पार हो चुकी हो—ऐसी दशामें तुम्हारे इस उपकारका प्रतिशोध मैं कैसे कर सकूँगा।'

तब चूडाला बोली—पतिदेव ! बारम्बार शुष्क क्रियाजालमें फँसकर जब आपका आत्मा व्याकुल हो जाता था, तब उसे देखकर मैं आपके लिये अत्यन्त चिन्तातुर हो जाती थी; इसलिये आपके आत्माको ज्ञानसम्पन्न बनाकर मैंने अपना ही तो स्वार्थ सिद्ध किया है—(अपनी ही चिन्ताका तो नाश किया है। इसमें आपका क्या उपकार किया।) आप तो व्यर्थ ही इस बातको लेकर मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।

शिखिध्वजने कहा—वरारोहे ! ठीक है, तुम जिस प्रकारके शुभ स्वार्थका सम्पादन कर रही हो, वैसा ही स्वार्थ सभी कुलाङ्गनाएँ सिद्ध करें।

चूडाला बोली—देव ! 'यह करूँ, यह न करूँ, इसे प्राप्त करूँ' इस प्रकारकी बुद्धिकी अपक्व दशाजनित कोमलतारूप जो स्थिति थी, उसका आप क्या अपने अंदर उपहास करते हैं ? क्योंकि जैसे आकाशमें पर्वत नहीं दीख पड़ते, उसी प्रकार आपमें वे पहलेके तुच्छ तृष्णाओंका समूह तथा कुत्सित संकल्परूपी कल्पनाएँ अब दृष्टिगोचर नहीं हो रही हैं। प्रियतम ! अब आपका कैसा स्वरूप बन गया है ? किस वस्तुमें आपकी निष्ठा है और आप क्या चाहते हैं। विभो ! आप अपनी पिछली शारीरिक चेष्टाओंको कैसा देखते हैं ?

शिखिध्वजने कहा—प्रिये! जिस-जिसके अंदर तुम हो, उसी-उसीके अंदर मैं उपस्थित हूँ। मैं इच्छा और स्पृहासे तथा एकदेशतासे रहित हो गया हूँ, आकाशके समान निर्मल हूँ, शान्त हूँ और वास्तविक परमार्थस्वरूप परमात्मा हूँ। भ्रमरलोचने! मैं समस्त वस्तुओंकी निष्ठासे मुक्त एकमात्र चिन्मय परमात्मस्वरूप हूँ। पतिव्रते! जो 'तत्' वस्तु—सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है वही मैं हूँ। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कह सकता। तरङ्ग-सदृश चञ्चल कटाक्षवाली प्रिये! तुम मेरी गुरु हो, अतः मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम्हारी ही कृपासे मैं इस भवसागरसे पार हो पाया हूँ। अब मैं शान्त, अपने ब्रह्मस्वरूपमें स्थित, कोमल, प्रयत्नशील, आसक्ति और एकदेशतासे रहित, सर्वव्यापक और वास्तवमें सबसे अतीत निर्मल आकाशकी तरह स्थित हूँ।

चूडाला बोली—प्राणनाथ! आप तो महान् सत्त्व-सम्पन्न तथा मेरे हृदयवल्लभ हैं। आपकी बुद्धि अगाध है। प्रभो! बतलाइये, ऐसी दशामें अब आप क्या चाहते हैं?

शिखिध्वजने कहा—कृशाङ्गि! चित्तके इच्छा और आसक्तिसे रहित हो जानेके कारण मैं प्रारब्धानुसार न्यायतः प्राप्त वस्तुकी न तो प्रशंसा करता हूँ और न निन्दा ही करता हूँ। अतः अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा ही करो।

चूडाला बोली—जीवन्मुक्तस्वरूप महाबाहो! यदि ऐसी बात है तो अब आप मेरा मत सुनिये और उसे सुनकर तदनुकूल आचरण कीजिये। महाराज! सर्वत्र अद्वैतका बोध होनेसे हमलोगोंके अज्ञानका विनाश हो गया है, अतः अब हमलोग सारी इच्छाओंसे मुक्त होकर आकाशकी तरह निर्मल रूपमें स्थित हैं। प्रभो! इस समय राज्यशासनद्वारा क्रमशः अपनी अवशिष्ट आयु बिताकर कुछ कालके बाद हमलोग विदेहमुक्त हो जायँगे। इसलिये नाथ! अब आप

अपने नगरमें लौट चलिये और राजसिंहासनपर बैठकर राजकाज सँभालिये। रमणियोंकी भूषणस्वरूपा मैं आपकी पटरानी होकर रहूँगी। राजन्! न तो मुझे भोगोंकी इच्छा है, न विभूतियोंकी। मैं तो स्वभाववश जो कुछ भी न्यायतः प्राप्त हो जाता है, उसीसे निर्वाह करती हूँ। यह स्वर्ग, राज्य अथवा क्रिया—कोई भी मेरे लिये सुखदायक नहीं है। मैं तो अपने स्वरूपमें स्थित होकर तदनुकूल व्यापारसे युक्त हो अपनी वास्तविक स्थितिके अनुसार बिना किसी क्षोभके स्थित रहती हूँ। 'यह सुख है और यह दुःख है' इस द्वन्द्वके नष्ट होनेके साथ-साथ मैं शान्त परमपदमें सुखपूर्वक स्थित हूँ।

शिखिध्वजने कहा—विशाल नेत्रोंवाली प्रिये! तुमने अपनी निर्विकार बुद्धिसे जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है। हमें राज्यके ग्रहण अथवा त्यागसे क्या प्रयोजन है। हमलोग सांसारिक सुख-दुःखकी चिन्ता और मत्सरसे रहित मत्सरशून्य और ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हुए यथाप्राप्त स्थितिके अनुसार निवास करेंगे।

इस प्रकार वहाँ उन दोनों निर्दोष एवं प्रेमी पति-पत्नीके बहुत देरतक परस्पर वार्तालाप करते हुए सायंकाल हो गया। तब उन दोनोंने उठकर अपना दैनिक कार्य सम्पन्न किया। वे दोनों जीवन्मुक्त तो थे ही, अतः स्वर्गकी सिद्धिका अनादर करके सर्वथा समचित्त हो वे दोनों एक ही शय्यापर बैठ गये। उनकी वह रात्रि तरह-तरहकी प्रेमभरी चेष्टाओंकी पूर्तिमें ही बीत गयी।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन! तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर वे प्रेमी दम्पति उस सुन्दर कन्दरामें बिछे हुए कोमल एवं चिकने पत्तोंके आसनपर उठकर बैठ गये। उस समय चूडालाने कहा—प्रभो! आपका यह शान्त तेजःस्वरूप केवल मुनियोंके योग्य है, अतः इसका परित्याग करके अब आपको इन्द्रादि

अष्ट लोकपालोंके समान तेजस्वी रूप धारण करना चाहिये।

उस वनमें चूडालाके यों कहनेपर राजा शिखिध्वजने 'ठीक है, ऐसा ही करूँगा' यों कहकर महाराजका स्वरूप धारण कर लिया और अपनी प्रिया चूडालासे कहा—'कमलदलके सदृश नेत्रोंवाली प्राणवल्लभे ! अब तुम्हें चाहिये कि क्षणभरमें ही अपने सत्यसंकल्पसे महान् वैभवसे युक्त विशाल सैन्यदल एकत्र कर दो।' अपने पतिकी यह बात सुनकर सुन्दरी चूडालाने ज्यों ही सेनाका संकल्प किया, त्यों ही उन दोनोंने देखा कि एक विशाल सेना सामने प्रत्यक्ष खड़ी है, जिसने उस काननको ठसाठस भर दिया है। वह हाथी-घोड़ोंसे भरी-पूरी है तथा पताकाओंसे आकाशको पूर्ण-सा कर रही है। जिसकी तुरही आदिके शब्द पर्वतोंकी गुफाओं तथा गहन कोटरोंको प्रतिध्वनित कर रहे हैं। तब उस सेनामें जिसके चारों ओर राजालोग मण्डलाकारमें खड़े थे तथा हृष्ट-पुष्ट सामन्त जिसकी रक्षा कर रहे थे, ऐसे एक मदस्रावी गजराजकी पीठपर वे राजदम्पति सवार हुए। तत्पश्चात् अपनी प्रियतमा महारानीसहित महाबली राजा शिखिध्वजने पैदल सैनिकों तथा रथोंसे खचाखच भरी हुई उस विशाल सेनाके साथ उस वनसे प्रस्थान किया। उस महेन्द्र पर्वतसे चलकर राजा शिखिध्वज मार्गमें काननोंसहित पर्वत, देश, नदी और ग्रामोंको देखते हुए तथा अपना सारा वृत्तान्त एवं तदन्तर्गत घटनास्थल अपनी प्रिया चूडालाको दिखाते हुए थोड़े ही समयके बाद अपनी पुरीमें जा पहुँचे, जो स्वर्गके समान शोभायमान हो रही थी।

वहाँ पहुँचनेपर जय-जयकारके तुमुल नादसे जब राजाके सम्मानित सामन्तोंको पता लगा कि महाराज पधार रहे हैं, तब वे उनके स्वागतके लिये सेना लेकर नगरसे बाहर निकले। उस समय तुरहीके तुमुल नादसे निनादित हुई दोनों सेनाएँ एकमेक हो गयीं।

तत्पश्चात् राजा शिखिध्वजने उन दोनों सेनाओंके साथ नगरमें प्रवेश किया। उस समय नगरकी नारियाँ राजाके ऊपर अञ्जलि भर-भरकर लाजा और पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं। राजा शिखिध्वज व्यापारियोंके मार्गको जो उत्तरोत्तर परम रमणीय था, देखते हुए राजमहलमें प्रविष्ट हुए। वह महल ध्वजा-पताकाओंसे खूब सजाया गया था और राजाके योग्य सारी माङ्गलिक वस्तुओंसे सम्पन्न था। वहाँ राजाने नमस्कार करते हुए प्रजावर्गका भलीभाँति सम्मान किया। इस प्रकार सात दिनोंतक नगरमें बड़े धूमधामके साथ उत्सव मनाकर राजा अपने अन्तःपुरमें निवास करते हुए अपने राज्यका पालन करने लगे। श्रीराम ! इस प्रकार भूतलपर चूडालाके साथ दस हजार वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् राजाका देहावसान हो गया। वे महाबुद्धिमान् नरेश इस शरीरको त्यागकर परमपदस्वरूप निर्वाणको प्राप्त हो गये।

श्रीराम ! राजा शिखिध्वजके भय और विषाद नष्ट हो गये थे। मान और मात्सर्यसे वे रहित हो गये थे तथा वे न्याययुक्त प्राप्त शास्त्रोक्त स्वाभाविक कर्मोंका सम्पादन करनेवाले थे। भोगोंमें उनकी वैराग्यबुद्धि हो गयी थी और वे सबमें समरूप ब्रह्मदृष्टिसे युक्त हो गये थे। इस प्रकार उपर्युक्त बोधके द्वारा उन्होंने मृत्युको—जन्म-मरणको जीतकर दस हजार वर्षोंतक एकच्छत्र राज्य किया था। (सर्ग १०९-११०)

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर-२७३००५	गीताप्रेस —पो० गीताप्रेस	✆ (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स २३३६९९७
	website : www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org	
दिल्ली-११०००६	२६०९, नयी सड़क	✆ (०११) २३२६९६७८; फैक्स २३२५११४०
कोलकाता-७००००७	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड e-mail:gobindbhawan@gitapress.org	✆ (०३३) २२६८६८९४; फैक्स २२६८०२५१
मुम्बई-४००००२	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट) मरीन लाईन्स स्टेशनके पास	✆ (०२२) २२०३०७१७
कानपुर-२०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड	✆ (०५१२) २३५२३५१; फैक्स २३५२३५१
पटना-८००००४	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	✆ (०६१२) २३००३२५
राँची-८३४००१	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	✆ (०६५१) २२१०६८५
सूरत-३९५००१	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड e-mail: suratdukan@gitapress.org	✆ (०२६१) २२३७३६२, २२३८०६५
इन्दौर-४५२००१	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग	✆ (०७३१) २५२६५१६, २५११९७७
जलगाँव-४२५००१	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	✆ (०२५७) २२२६३९३
हैदराबाद-५०००९५	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	✆ (०४०) २४७५८३११
नागपुर-४४०००२	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड	✆ (०७१२) २७३४३५४
कटक-७५३००९	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	✆ (०६७१) २३३५४८१
रायपुर-४९२००९	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक	✆ (०७७१) ४०३४४३०
वाराणसी-२२१००१	५९/९, नीचीबाग	✆ (०५४२) २४१३५५१
हरिद्वार-२४९४०१	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	✆ (०१३३४) २२२६५७
ऋषिकेश-२४९३०४	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम e-mail:gitabhawan@gitapress.org	✆ (०१३५) २४३०१२२, २४३२७९२
कोयम्बटूर-६४१०१८	गीताप्रेस मेंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स	✆ (०४२२) ३२०२५२१
बेंगलोर-५६००२७	१५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालबाग रोड	✆ (०८०) २२९५५१९०, ३२४०८१२४

स्टेशन-स्टाल— **दिल्ली** (प्लेटफार्म नं० १२); **नयी दिल्ली** (नं० १२-१३); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० ४-५); **कोटा** [राजस्थान] (नं० १); **बीकानेर** (नं० १); **गोरखपुर** (नं० १); **कानपुर** (नं० १); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **वाराणसी** (नं० ४-५); **मुगलसराय** (नं० ३-४); **हरिद्वार** (नं० १); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० १); **धनबाद** (नं० २-३); **मुजफ्फरपुर** (नं० १); **समस्तीपुर** (नं० २); **हावड़ा** (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० १); **सियालदा मेन** (नं० ८); **आसनसोल** (नं० ५); **कटक** (नं० १); **भुवनेश्वर** (नं० १); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० १); **अहमदाबाद** (नं० २-३); **राजकोट** (नं० १); **वडोदरा** (नं० ४-५); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० १); **गुवाहाटी** (नं० १); **खड़गपुर** (नं० १-२); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० १); **बेंगलोर** (नं० १); **यशवन्तपुर** (नं० ६); **श्री सत्यसाई प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० १) एवं **अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।**

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-३३१००१	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क ✆ (०१५६२) २५२६७४
ऋषिकेश-२४९१९२	**मुनिकी रेती**
तिरुपति-५१७५०४	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स
बेरहामपुर-७४२१०१	म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, ब्लाक-बी, शॉप नं० ५७—६०, प्रथम तल, के० एन० रोड (मुर्शिदाबाद)

ISBN 81-293-0907-6
9788129309075

Code 320▲